नै हि का

Naipunnya Hindi Patrika

अतिरिक्त भाषा विभाग
नैपुण्या इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट एंड इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी
(NIMIT)

भाषा : हिन्दी

ग्रन्थकार
अतिरिक्त भाषा विभाग
नैपुण्या इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट एंड इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी , पोन्गम

संस्करण : 2022

कुल पृष्ठ : 75

ISBN No. 978-81-957655-2-2

प्रकाशक
नैपुण्या इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट एंड इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी , पोन्गम

मुद्रक
एस एम बुक सेन्टर
एस एम कॉम्प्लेक्स
अंगमाली

भूमिका

अतिरिक्त भाषा विभाग ने 19 मार्च, 2022 को बहुभाषी राष्ट्रीय वेबिनार का आयोजन किया। वेबिनार मलयालम, फ्रेंच और हिंदी भाषाओं में था।

वेबिनार का आयोजन तीन सत्रों में किया गया था। डॉ.अजू के नारायणन (मलयालम), डॉ.शोभा लिसा जॉन (फ्रेंच), डॉ.एम एम मंगोडी (हिंदी) वक्ता थे। इसके साथ ही विभिन्न महाविद्यालयों के शिक्षकों द्वारा प्रबंध प्रस्तुतीकरण भी किया गया था। पिछले शैक्षणिक वर्ष की तरह इस वर्ष भी आई एस बी एन नंबर के साथ शोध पुस्तक प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है। संपादक के रूप में अतिरिक्त भाषा विभाग के डॉ.टेसी पौलोस, मिस.रजिता के रवि, डॉ.सोनिया एस, मिस.आशा वी, मिस.अन्ना बिन्नी आदि अध्यापिकाओं ने काम किया।

दिए हुए सहयोग एवं प्रेरणा के लिए कॉलेज के प्राचार्य रेव. फ़ादर डॉ. पोलच्चन के जे से हम विशेष रूप से आभारी हैं।

डॉ. टेसी पौलोस
विभागाध्यक्ष
अतिरिक्त भाषा विभाग

संगोष्ठी आयोजन समिति

रेव. फ़ा. डॉ. पोलच्चन के जे
(प्रिंसिपल , कार्यकारी निदेशक, NIMIT)

विभागाध्यक्ष
डॉ . टेसी पौलोस

वेबिनार समन्वयक
डॉ . टेसी पौलोस
डॉ.सोनिया एस

संकलन और संपादन
डॉ. टेसी पौलोस
डॉ.सोनिया एस

अनुक्रमणिका

- **डॉ. अजय जी कम्मत**
  हिंदी साहित्य में बालकों व स्त्रियों का मानवाधिकार

- **डॉ. सुजित एम एस**
  स्वदेश दीपक ,हृषीकेश सुलभ एवं कृष्ण बलदेव वैद के नाटकों के विशेष सन्दर्भ में दलितों का शोषण।

- **डॉ. श्रीकांत के**
  समकालीन लेखिका नासिरा शर्मा की कहानियों में बच्चों की समस्या

- **डॉ. सौम्या एम बी**
  समकालीन महिला कहानी लेखन में ट्रान्सजेंडर के अधिकार

- **डॉ. सफीना एस ए**
  समाकालीन कहानियो में किन्नर विमर्श

- **डॉ. प्रसीजा एन एम**
  मेहेरुन्निसा परवेज़ के उपन्यास 'अकेला पलाश' में चित्रित स्त्री का जीवन संघर्ष

- **राखी क्लेमन्ट**
  समकालीन आदिवासी नाटक :एक परिचय

- **श्रीलक्ष्मी उल्लास**
  यौर ड्रीम्स आर माइन नाउ - – रविंदर सिंह

- **एंजेल रॉय**
  लिंग आलोचना; मलयालम फिल्म उद्योग में सुधार

- डॉ. सोनिया एस
  यात्रा साहित्य में मनुष्य और प्रकृति का अंतसंबंध

- **डॉ. टेसी पौलोस**

पारिस्थितिक संघर्ष : संजीव के उपन्यासों के सन्दर्भ में।

हिंदी साहित्य में बालकों व स्त्रियों का मानवाधिकार

डॉ. अजय जी कम्मत
असिस्टेंट प्रोफेसर
सेंट अलबर्टस कॉलेज, एरणाकुलम

मानवाधिकार

किसी भी व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता और सम्मान का अधिकार ही मानव अधिकार है। मनुष्य योनि में जन्म लेने के साथ मिलने वाला प्रत्येक अधिकार मानवाधिकार की श्रेणी में आता है। संविधान में बनाये गए अधिकारों से बढ़कर महत्व मानवाधिकारों का माना जा सकता है। इसका कारण यह है कि ये ऐसे अधिकार हैं जो सीधे प्रकृति से सम्बन्ध रखते हैं जैसे जीने का अधिकार केवल कानून सम्मत अधिकार नहीं है बल्कि इसे प्रकृति से प्रदान किया गया है। सभी व्यक्तियों को गरिमा और अधिकारों के मामले में जन्मजात स्वतंत्रता और समानता प्राप्त है। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवन स्तर को प्राप्त करने का अधिकार है जो उसे और उसके परिवार के स्वास्थ्य, कल्याण और विकास के लिए आवश्यक है। मानव अधिकारों में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के समक्ष समानता का अधिकार एवं शिक्षा का अधिकार आदि नागरिक और राजनैतिक अधिकार भी सम्मिलित हैं।

- **बालकों का अधिकार**

- बच्चों को एक नाम और राष्ट्रीयता का अधिकार है।
- वस्त्र, यथोचित भोजन , और स्वच्छ पानी का अधिकार है।
- बच्चों को रहने के स्थान का अधिकार है।
- बच्चों को बीमार पड़ने पर इलाज का अधिकार है।
- बच्चों को स्कूल जाने का अधिकार हैं।
- बच्चों को उन परिवारों के साथ रहने का अधिकार है जो उनको सुरक्षा दे सकते है।
- बच्चों के साथ हो जानेवाली हिंसा से सुरक्षा का अधिकार है।
- बच्चों के सुरक्षित रहने और किसी प्रकार की आपदा, शोषण तथा अवहेलना से बचाए जाने का

अधिकार है।

- बच्चों को अन्याय तथा सुरक्षा का अधिकार है।
- बच्चों को मादक द्रव्यों से बचाने का अधिकार है।
- अपने चितन को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने और अपने विचारों का आदान प्रदान केलिए एक दूसरे से मिलने का अधिकार है।
- लोग उनकी बातों को सुनें और ऊपर विचार करें।
- अपंग बच्चों को विशेष सुरक्षा की जाय और उन्हें विशेष प्रशिक्षण दिया जाय।
- बच्चों को अपनी भाषा बोलने और अपना धर्म तथा संस्कृति को व्यवहार में लाने की अनुमती हो।
- बच्चों को किसी ऐसे काम से बचाया जाए जिससे उन्हें नुकसान हो।
- बच्चों को सैनिक कार्य करने का अधिकार न हो।
- बच्चों को किसी भी प्रकार की मजदूरी करने को मजबूर न करना।
- बच्चों को खेलने का अधिकार दिया जाय।

उपर्युक्त सभी अधिकारों की मीमांसा उन अधिकारों की ओर संकेत करती है, जो जन्म से उन्हें प्राप्त होते हैं। इसका एक ओर पहलू यह भी है कि ऐसी अनेक परिस्थितियाँ है जिससे इस प्रकार की आवश्यकताओं को उत्पन्न किया है। शिक्षा से संबंधित बच्चों के अधिकार के दुहरे नापदंड समाज में बच्चों के प्रति अहिंसा उत्पन्न करने केलिए भी ज़िम्मेदार है। बच्चों का प्रसन्न रहने का अधिकार है अर्थात कोई उनकी भाषाओं को अवहेलित नहीं करेगा। उनको न्याय का अधिकार है। उनको सुरक्षा का अधिकार है, उनकी कठिनाइयों को सुनने का अधिकार है और उनको अध्ययन का अधिकार है। लेकिन प्रश्न यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार चार्टर और संवैधानिक व्यवस्थाओं के बावजूद बच्चों से संबंधित जिन शैक्षणिक आधारों को हमने स्वीकार किया है बे पूरे नहीं हो पा रहे हैं। एक प्रकार से यह मानवाधिकारों की अवहेलना है। दूसरा प्रश्न बाल श्रमिकों का है। यह कहा जाता है कि गरीब देशों में बाल अधिकारों का सबसे बड़ा उल्लेखन बाल श्रमिकों के रूप में है। बाल श्रमिकों के विभिन्न रूपों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर के साथ-साथ भारत में भी देखा जा सकता है जैसे : - दासता तथा पराधीनता, बच्चों का यौन शोषण, ज़बरदस्ती फौज में काम कराना, अश्लील कार्यों केलिए प्रयुक्त करना, अपराधों केलिए विशेष रूप से तस्करी के लिए प्रयोग करना और स्वास्थ्य को

खराब करने और उनकी नैतिकता को प्रभावित करने वाले कार्यों को कराया जाना।

हम सभी मानते हैं कि समाज में बच्चों कौ महत्ता पर दो राय नहीं, उनके अधिकारों पर शंका नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय सहमती भी है। फिर भी उनके अधिकारों की उपेक्षा हो रहे हैं। बालकों के प्रति अन्याय व अत्याचार हो रहे हैं। सरकार की तरफ से बच्चों केलिए काफी कानून बनाए गए हैं। लेकिन किसी न किसी रूप में इन नियमों का उल्लंघन काफ़ी जगहों पर हो रहे हैं।

- **स्त्रियों का मानवाधिकार**

वैदिक काल से ही भारतीय समाज स्त्री को देवी मानकर उसकी पूजा करती थी। मनुस्मृति में स्त्री की स्वतंत्रता के बारे में यों कहा गया है -
"पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने, पुत्रो रक्षति वार्द्धक्ये, नः स्त्री स्वतन्त्रमहति" |

अर्थात् स्त्री चाहे बेटी के रूप में हो, पत्नी के रूप में हो या माँ के रूप में, सभी तरह से सुरक्षा का हकदार है। यहाँ पर "नः स्त्री स्वातन्त्रमहति" का मतलब यह कदापि नहीं है कि स्त्री स्वतंत्रता का हकदार नहीं है। बल्कि यह है कि स्त्री को हर हालत में सुरक्षित रहना चाहिए. उसकी हर ज़रूरतों को पूरा करना पिता के रूप में, पति के रूप में और पुत्र के रूप में पुरुषों का कर्तव्य है। लेकिन आज की स्त्री का यथार्थ स्थिति बहुत ही दयनीय है। एक तरफ से विज्ञान की प्रगति के साथ स्त्री विभिन्न क्षेत्रों में कामयाबी को छूने लगी है, तो दूसरी तरफ से अपने चारों ओर घटित होनेवाली सब खबरों से अज्ञान नारी वर्ग एक बदहत्तर जिंदगी जी रही हैं। महिला मानव है, पुरुष के समान लेकिन शारीरिक और मानसिक संरचना में वह पुरुष से भिन्न है, जो प्रकृति ने नहीं बल्कि सामाजिक संरचनाओं ने परिणत किया हैं। इस सामान्य एवं निर्विवाद वक्तव्य केलिए कानूनी दर्जा हासिल करने केलिए भी महिला संगठनों को लंबी संघर्ष करने की आवश्यकता पड़ी। संघर्ष की लंबी दौर में संयुक्त राष्ट्र संघ की महत्वपूर्ण भूमिका रही। जिससे महिला आंदोलनों को समय-समय पर संघर्ष को ज़ारी रखने का एक ठोस आधार भी मिला।

- **स्त्रियों का अधिकार**

1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों को सार्वभौमिक घोषणा को जिसे विश्व के अधिकांश देशों द्वारा स्वीकार किया जा चुका है। इस घोषणा में सभी प्रकार के भेद-भाव,

लैंगिक भेद-भाव, को समाप्त करने का आह्वान किया गया। किंतु आह्वान को गंभीरता से नहीं लिया गया। 1975 में पहली बार महिलाओं की परिस्थिति पर चिता व्यक्त की गई तथा 1977 में महिलाओं की व्यक्तिगत गरिमा का प्रश्न उठाया गया। 1978 में महिलाओं के प्रति हिंसा को उनके खिलाफ़ भेदभाव की संज्ञा दी तथा इसी वर्ष महिलाओं के प्रति हिंसा अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे के रूप में चंचित हुआ। 1993 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा महिलाओं एवं बालिकाओं के अधिकारों को मानव अधिकार के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया गया तथा महिलाओं के प्रति हिंसा को समाप्त करने के आशय से नवीन घोषणा ज़ारी को गई।

1995 में बीजिंग सम्मेलन में महिला अधिकारों केलिए मानव अधिकारों के रूप में संघर्ष की विस्तृत रणनीति ज़ारी की गई। जिसका उद्देश्य सार्वजनिक एवं निजी जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं के योगदान में आनेवाली बाधाओं को समाप्त करना था। इस सम्मेलन में ऐसी एक दर्जन महत्वपूर्ण क्षेत्रों की चर्चा की गई जैसे - महिलाओं पर निरंतर बढ़ते बोझ की त्रासदी, शिक्षा प्राप्ति के क्षेत्र में असमानता तथा अपर्याप्त अवसर, स्वास्थ्य लाभ की स्थिति में असमानता और असमान तथा अपर्याप्त सुविधाएँ, महिलाओं के प्रति बढ़ते अत्याचार, संघर्ष की स्थितियों का महिलाओं पर प्रभाव, आर्थिक ढाँचों, नीतियों तथा उत्पादन प्रक्रियाओं में महिलाओं का योगदान एवं असमानता की संरचनाएँ, अधिकारों और निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता में असमानता महिला विकास केलिए उपलब्ध अपर्याप्त तंत्र, अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर मान्य महिला मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता और निष्ठा का अभाव, समाज में महिलाओं के योगदान को प्रचलित करने में जनसंचार माध्यमों की अपर्याप्त भूमिका, प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन और पर्यावरण के संरक्षण में महिलाओं के योगदान को अपर्याप्त मान्यता एवं अपर्याप्त समर्थन तथा बालिकाओं की शोचनीय स्थिति।

स्त्री के जीवन को सुरक्षा की ओक और कवच पहनाते हुए 1998 में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने लैंगिक हिस्सा को अपराध घोषित किया। हर प्रकार के घरेलू हिंसा के खिलाफ़ कानूनी व्यवस्था सुदृढ़ बनाया गया। कम आयु के आरोपित विवाह पर रोक लगाने की व्यवस्था बनायी गई। बालक तथा बालिकाओं दोनों केलिए मुक्त अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था किए गये तथा उचित स्वास्थ्य लाभ की प्रावधान भी निर्धारित किए गए। इस प्रकार विगत अर्धशताब्दी में संघों के नए आयाम विकसित हुए हैं, कुछ उपलब्धियाँ भी हासिल हुए हैं, किंतु महिला जनसंख्या के अधिकांश भाग केलिए भारत में ही नहीं वरन् संपूर्ण विश्व में ये उपलब्धियाँ आज भी मिथक है।

कई बार इस भ्रामक धारणा का प्रचार किया गया है कि नारी अधिकारों का विमर्श पश्चिम की देन है। आरोपित है और भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में विपरीतार्थक है। यह सच है कि नारी अधिकार आंदोलन व्यापक संगठित स्तर पर यूरोप और अमेरिका में प्रारंभ हुए और बाद में भारत जैसे ऐशियाई देशों में फैल गए। इसके साथ-साथ कई देशज प्रयास भी हुए और भारत में तो इस तरह के प्रयासों की एक लंबी श्रृंखला है। दुर्भाग्य से इन प्रयासों को अपेक्षित जानकारी का अधिकांशतः अभाव है और जहां जानकारी है वहाँ भी कहीं इनके महत्व को कम आंका गया है तो कहीं इन्हें अवहेलित भी किया गया है। सचमुच नारी अधिकारों के प्रश्नों पर अपेक्षित वैज्ञानिक ऐतिहासिक समझ का अभाव है। भारतीय संदर्भ की विशिष्टता पर यदि इसकी चर्चा की जाए तो भारतीय सांस्कृतिक धरोहर, जिसमें नारी की उच्च, उत्कृष्ट दैवीय छवि को प्रमुखता देते हुए विवेचना की गई है, फिर भी नारी समानता एवं अधिकारों केलिए किए गए अनेकानेक प्रयासों, सुधार आंदोलनों, महिला आन्दोलनों एवं व्यक्तिगत योगदानों का समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है।

स्त्री अधिकारों की दृष्टि से वैदिक युग में, सामाजिक आर्थिक, धार्मिक,राजनैतिक, सभी क्षेत्रों में समानता- झलक रही थी। वेदों कौ रचना में लगभग 200 श्लोकों का योगदान स्त्रियों का माना गया है। राजनैतिक सभाओं की क्रिया कलापों में भी स्त्रियों की सक्रिय सहभागिता का उल्लेख मिलता है। समृद्धि, ज्ञान एवं शक्ति को दैवी प्रतीकों- लक्ष्मी, सरस्वती.दुर्गा के अतिरिक्त ऐसे अनेक उदाहरण हम दे सकते हैं। जिन्हें त्याग, साहस एवं धैर्य का प्रतीक माना जाता है। पुराणों में अहल्या, तारा, सीता, कुंती, द्रौपदी, आदि की अर्चना का विशेष महत्व बताया है। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। उत्तर संरचना में जटिलता, कठोरता, संकीर्णता आदि के उद्भव से स्त्रियों की स्वतंत्रता का धीरे-धीरे हनन होने लगा। स्त्रियों के व्यक्तित्व को प्रजनन एवं पारिवारिकता तक सीमित किया जाने लगा तथा बाल विवाह, बहु विवाह, दहेज, विधवा उत्पीड़न पर्दा प्रथा, सती जैसे कुप्रथाओं ने स्त्री की हालत अधिक दुभर कर दिया। बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सिख धर्म तथा बाद में कर्नाटक में किंगायत एवं उत्तर भारत में भक्ति आंदोलनों ने इस स्थिति के विरुद्ध विद्रोह का स्वर ऊँचा किया।

धार्मिक समूहों के अतिरिक्त वाराहमित्र, देवान भट्ट एवं कवि बाण जैसे दार्शनियों ने स्पष्ट घोषणा की कि स्त्रियों की असमान स्थिति का अंत कना ही होगा। बारहवीं सदी में कर्नाटक में लिंगायत समाज के ब्राह्मण धर्मवाला बासवेश्वर ने विधवा विवाह एवं विवाह विच्छेद

जैसे क्रांतिकारी विचारधारा को सामने रखा। बासवेश्वर की शिष्या महादेविका, तमिलनाडु कवयित्रियाँ आंडाल और आवाई और राजस्थान की कवयित्री मीरा कुछ ऐसे नाम है जिन्होंने सामंतकालीन स्त्री-विरोधी परिवेश की चुनौती दी।

उन्नीसवीं सदी में उपजे व्यापक धर्म एवं समाज सुधार आंदोलनों ब्रह्म समाज,आर्य समाज, प्रार्थना समाज थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन, जैसे अनेक स्थानीय सुधार संगठनों ने भारतीय समाज में पनप रही स्त्री-पुरुष विषमता को चुनौती दी एवं सुधारात्मक प्रयास किए। राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशव चन्द्र सेन, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले एवं श्रीमती आनीबसेंट की भूमिका इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। इनके अलावा कुछ ऐसी महिलाओं का भी नाम इधर लिया जाना ज़रूरी है। जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान गाँधीवादी आँदोलन के भीतर एवं समानांतर महिला प्रश्नों पर संघर्ष ज़ारी रखा। उनमें सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गाँधी, रुकैया हुसैन, हंसा मेहता, विजयलक्ष्मी पंडित, कमला देवी चट्टोपाध्याय, कृष्णा नेहरू, हाथिसिंग, सुचेता कृपालनी, अरुणा असफअली का विशेष स्थान है।

बीसवीं सदी के प्रारंभ से देश में महिला संगठनों का प्रारंभ एवं महिला अधिकारों केलिए संगठित प्रयास प्रारंभ हो गए थे। 97| में भारत सरकार की और से भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति का गठन किया गया। उस समिति ने यह पूर्णतः स्पष्ट कर दिया कि भारतीय समाज में स्त्रियों केलिए वैधानिक सशक्तीकरण ही पर्याप्त नहीं है। समिति ने यह भी स्पष्ट किया कि महिलाओं की स्थिति में वास्तविक सुधार उस समय तक नहीं होगा। यह कार्य अत्यंत दुभर है एवं इसकेलिए राज्य एवं समाज की भागीदारी अवश्यक है। स्वयंसेवी संस्थाओं एवं महिला संगठनों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होगी। भारत सरकार ने महिलाओं की समस्याओं का उचित निराकरण केलिए एक दस वर्षीय योजना प्रस्तुत की है। जिसमें नीति-निर्धारण एवं निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की सहभागिता, कृषि, उद्योग, अर्थ-व्यवस्था में स्थिति का आकलन, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आवास, पर्यावरण, विज्ञान, प्रौदयोगिकी के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति, बालिका की स्थिति, महिलाओं के खिलाफ़ बढ़ती हिंसा आदि को रेखांकितत किया गया है। निश्चय ही यह स्वागतपूर्ण प्रयास है, लेकिन प्रश्न यह उठता है कि ये प्रयास महिलाओं को अपना अधिकार दिलाने में कितना सफल हो पाएगा।

स्पष्टतः भारत में महिला अधिकारों के संदर्भ में कुछ क्षेत्रों में स्थिति उत्साहजनक है तो कहीं निराशाजनक है। एक हद तक इन वैधानिक अधिकारों ने स्त्री को सुदृढ़ आधार दिया है

तो भी आज स्त्री बड़े पैमाने पर इन अधिकारों के लाभ से बहुत दूर है। कुछ क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की स्थिति और भी अधिक शोचनीक है। उनको सुरक्षा पूर्णतः नियोक्ता की इच्छा पर निर्भर है। इस संदर्भ में नियमों एवं नियमन का अभाव महिलाओं के शोषण को बढ़ावा देता है। इसी तरह, "महिला काश्तकारों, शिल्पकारों, कामगारों यहाँ तक कि लघु-उद्यमियों की सुविधाओं एवं विकास के अवसरों में कटौती स्पष्ट दीख रही है। एक ओर गुणवत्ता को दौड़ में महिलाओं पर अतिरिक्त आर्थिक एवं मानसिक दबाव बढ़ रहे हैं। दूसरी ओर कार्यक्षेत्र में बढ़ती हिंसा उनके अवसरों को सीमित कर रहे हैं। भूमंडलीकरण ने हिंसा एवं अपराध का भी अंतर्राष्ट्रीययरण किया है। जिससे महिलाओं की असुरक्षा बढ़ी है"[1] |

बस्तुतः महिला अधिकारों का प्रश्न जितना कानूनी एवं राजनैतिक है उतना ही सामाजिक परिवेश सांस्कृतिक परंपराओं तथा आर्थिक संरचनाओं द्वारा निर्धारित एवं प्रभावित है। आज यद्यपि महिलाएँ अपने लिए समान मानवीय अधिकारों को प्राप्त करने केलिए सभी चुनौतियों का सामना करने केलिए तैयार है। परंतु जब तक पुरुष प्रधान समाज के ढाँचे में आधारभूत परिवर्तन नहीं होगा और पुरुष प्रधान रीति-रिवाजों, लोच और कानून में परिवर्तन नहीं होगा, यह समस्या ऐसे ही बनी रहेगी।

1 भारत में मानव अधिकार, अरुण चतुर्वेदी - पृ.सं -54

स्वदेश दीपक ,हृषीकेश सुलभ एवं कृष्ण बलदेव वैद के नाटकों के विशेष सन्दर्भ में दलितों का शोषण।

डॉ. सुजित एम एस
असिस्टेंट प्रोफेसर
एस सी एम एस स्कूल ऑफ़ टेक्नोलॉजी एंड मैनेजमेंट
मुट्टम , आलुवा

1.दलितों का शोषण

समाज से उपेक्षित वर्ग होने के कारण दलितों का शोषण करना बहुत ही आसानहै। शिक्षा का अभाव, आत्मविश्वास की कभी आदि के कारण उनका शोषण कई रूपों में हो सकता है। समाज के उच्चवर्ग, अधिकारी गण आदि के हाथों उनका विविध रूपों में शोषण करते हुए हम नाटकों में देख सकते हैं।

1.1 ज़मीदारों द्वारा शोषण

ज़मीन्दारी प्रथा ब्रिटीश सरकार के योगदान है। ब्रिटीशों ने अपनी सुविधा के लिए एक प्रदेशों में ज़मीन्दारों को नियुक्त किया। वे उस प्रदेश के खानदानी व्यक्ति होते है। उसके कब्जे में थे सारी धरती । अधिकार भी उनको प्राप्त थी। उस अधिकार के बल पर वे अपनी संपत्ति बढ़ाने की कोशिश लगातार करते थे। इस केलिए दलितों को वे गुलाम बनाकर रखते थे।ज़मीन्दारों द्वारा शोषण केवल आर्थिक तौर पर ही नहीं बल्कि शारीरिक, मानसिक तौर पर भी होते हैं। किसी भी प्रकार दलितों को अपने कब्जे में लाने का प्रयास वे करते है।
ज़मीन्दारों के इस प्रकार के शोषणों का चित्रण साहित्य में खूब उपलब्ध है। नाटकों में ज़मीन्दारी प्रथा की समस्याओं और निम्न वर्ग, विशेषकर दलितों के प्रतिरोध को भी चित्रित किया है। स्वदेश दीपक एवं हृषीकेश सुलभ के नाटकों में नाना प्रकार के ज़मीन्दारों को चित्रित किया है। एक विशेषता यह है कि ज़मीन्दार हमेशा समाज के नाना प्रकार के मुख्य अधिकारियों एवं प्रमुख व्यक्तियों से संबन्ध रखते है। इसका एक उद्देश्य अपने प्रयोजन केलिए इन्हें एक साधन के रूप में प्रयोग करना है।

स्वदेश दीपक जी के 'सबसे उदास कविता' नाटक में ज़मीन्दारी प्रथा को खूब दिखाया है। यहाँ 'बडे सरकार' ज़मीन्दार के प्रतिनिधी है। यहाँ दलितों के प्रतिरोध के शब्द भी दर्शाया है। बड़े सरकार द्वारा

किए गए क्रूरता के फलस्वरूप उनके पुत्र के खून हो जाता है। नाटक में बड़े सरकार को इसके प्रतिरोध केलिए तत्पर होकर चित्रित किया है। वास्तव में जो खून हुआ वह ज़मीन्दार के शोषण का सही जवाब है। ज़मीन्दार के पुत्र के खूनी को पकड़ने केलिए डी.एस.पी अहूजा कुछ भी करने को तैयार होते है। यह इसलिए है कि इससे ज़मीन्दार खुश होंगे और उनको इनाम भी मिलेगा। दलितों के विरुद्ध क्रूर आचारण का चित्रण नाटक में है।

'' .. ज़मीन्दार के बेटे के खूनी को पकड़ने के लिए उस डी.एस.पी. अहूजा ने बीस औरतों के कपडे फड़वा दिए। नंगा हाँक कर लाया। भरे बाज़ार में चली बीस नंगी औरतें। द स्टार्क नैक्ड विमन अफ़ इंडिया | झुक गई लोगों की आँखे। बड़ा बेशर्म साहस चाहिए नंगी औरत को देखने केलिए .....''

क्यों डी.एस.पी अहूजा ऐसे किए है? इसका उत्तर यह है कि बड़े सरकार के प्रीति केलिए। तब • समझ में आ जाएगा जमीन्दारी प्रथा के असलीयत। यहाँ पुलीसवाले कानून के अनुसार नही, के बल्कि ज़मीन्दार केलिए काम करते है। यही ज़मीन्दारी प्रथा के एक खासियत है। इसी डी.एस.पी को मारकर हिंसा के माध्यम से प्रतिरोध करने का चित्रण भी नाटक में दिखाया है। वास्तव में यह प्रतिशोध का अंतिम चरण है। इस जमीन्दारी प्रथा असहनीय होने पर दलित लोग हिंसा के माध्यम से प्रतिरोध करने लगेगा।

यहाँ ज़मीन्दारी शोषण एवं रमेसर के प्रतिरोध को चित्रित किया है। रमेसर के प्रसंग में एक साथ विरोध का स्वर है और जमीन्दारी प्रथा के संघर्ष भी :

रमेसर : '' चाहे केहू घर फूंक दे, चाह जान-परान ले ले, पर हम तो ना जोतेंगे बाबूटोला का हल आज से. समझी? लात-गाली तो वइसे ही करम में है। फिर कवन बात का डर ? काम करो। तो भी पीडो, ना करो तो भी पीटो। फिर कवन बात की गुलामी ? "

जाति के आधार पर यह निश्चित किया है कि दलित लोगों को ज़मीन्दारों केलिए काम करना ही है। मगर ज़मीन्दार लोग दलितों को काम करवाने केलिए उन्हें पीटता है। बाद में दलितों को पीटना एक आदत बन गया। तब रामेसर जैसे लोग इसका विद्रोह करते है। "सबसे उदास कविता' में अपूर्वा ऐसी व्यक्ति थी। 'अमली' में रमेसर इसी विद्रोही का स्वर उठाता है। मगर ज़मीन्दार के प्रति भय के कारण रमेसर की माँ तो इस विद्रोह के विरुद्ध है। अपने पुत्र की जान पुत्र' उनको प्यारी है। बुधिया के विरोध केलिए यह भी कारण है कि पीढ़ियों से दलित लोग ज़मीन्दारों केलिए काम करते है। इसलिए वे सोचे होंगे कि ज़मीन्दार की सेवा करना दलितों का धर्म है। बुधिया की बातों से यह सब बातें स्पष्ट हो जाते है।

बुधिया:"आग लगवाएगा झोपडी में तू। बुढ़ौती के झोंटा करवाएगा का हमरा ? लात-गाली तो मिलेगी ही, इज्जत-आबरू भी जाएगी घर की जवान कनिया बैठी है घर में अउर तू वैर नेवत रहा है? एक तो पहिले से ही..."

बुधिया की हर बातों में ज़मीन्दारी प्रथा के प्रति कठुता दिखाई देती है। वास्तव में रमेसर ज़मीन्दारी प्रथा का प्रतिरोध करता है। बुधिया उस प्रथा की असलीयता सामने लाती है।

बुधिया :'' माथा थिर कर रे बात मान ले हमरी मालिक मालिकान से रगड़ा झगडा करके जन-मजूर की जिनगी ना कटती है। जन-मज़ूर का जनम ही होता है मालिक मालिकान की सेवा टहल खातिर। समझा ? एही सेवा टहल में नेम धरम छिपा होता है। जोकरी धरती पर पसीना बहाके, जोकरी धरती पर हाथ-गोड़ हिलाके रोटी मिले, ओकरी बात का बुरा ना मानते बेटा। बिना मज़ूरी जिनगी तो पार ना लेगेगी बेटा। हियाँ न ऊहाँ।.... दुआर, ना तो ऊ दुआर"

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि मालिक केलिए काम करना दलितों का कर्तव्य ही है। मालिक यहाँ पर ज़मीन्दार ही है। इसी मनोभाव के कारण ज़मीन्दारी प्रथा आज भी विद्यमान है समाज में। पीढ़ियों से इस संदेश देकर आने के कारण दलित लोग भी इस प्रथा के विरोध नहीं करते। जब ज़मीन्दार के अधिकार पर कोई आघात आ जाए तो वे भी प्रतिरोध करके अपने अधिकार साबित करने का प्रयास करेंगे। महादेव राय के प्रसंग में इस केलिए सबूत मिलता है। "महादेव राय आज तलक ई नवाल ना हुआ तो आज काहे हो रहा है ?.....ई बात सब केहु जान रहा है। तहरो मालूम है। बोलो कि एह गाँव में हिन्दु ना रहे? आज अमली की घड़ारी ज़मीन गई...कल दूसर लोगन का घर दुआर जाएगा....मन्दिर नीलाम होगा। अब केहु चुप बइठके ना सहेगा। अरे जब जमीन जायदाद मान-मरजाद ना रहा, तो जी के का होगा भाई? हमनियों के लाठी में दम है, सो आज ई फैसला होके रहेगा"।

इस प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि जब ज़मीन्दार दलितों के मान-मर्यादा छीनकर, उन्हें पशु से भी निम्न देखा, तब उनको आनन्द मिला। दलितों के संकट उनके समझ में नहीं आया। जब उसी बात ज़मीन्दार को हुआ खुद को अपमानित महसूस होते है। अपने इज्जत वापस लाने केलिए प्रयत्न करते है। यदि यही घटना दलितों को हुई तो पूछने वाले कोई नहीं होते।

कुछ जातियाँ जन्म से ही निम्न रहेगा, इस प्रकार के वर्ण व्यवस्था के कारण ही ज़मीन्दारी प्रथा सशक्त बन गया। निम्न जातियों को अधिकार देना या मनुष्य की कोटी में रखना भी ज़मीन्दारों के लिए अस्वीकार्य था। तब केवल ज़मीन्दार ही नहीं बल्कि अन्य जातियों के लोगों ने भी इन जातियों को घृणा से देखना, शुरु किया। इसका सबूत 'माटीगाडी' नाटक में चन्दनक एवं वीरक की बातचीत से स्पष्ट है:

“चन्दनक :नीच जात का नाम कवन ले।

वीरक :जब तो बिन बोलवाए छोड़ेंगे ना

चन्दनक :अरे इज्जाम की औलाद। बाप-दादा हाथ में उस्तरा लेकर इजामत बनाते रहे अउर तू बन गया तलवार लेकर सेना पति।

वीरक :अपनी जात भूल गया रे नीच?

चन्दनक :बता..बता हमारी जात।

वीरक :ना बोलेंगे अपने मुँह से तुम्हारी नीच जात,

चन्दनक :बता, ना तो..... बोल

वीरक :तुरही महतारी, बाप ढोल, चमार है तू।

चन्दनक: हम चमार है। अच्छा तो आ तू देख गाडी । इज्जाम की औलाद, तू देख गाडी”।

यहाँ वीरक और चन्दनक अपने जाति के कारण खुद को अपमानित समझते है। फिर भी एक दूसरे को सबसे निम्न साबित करने की कोशिश करते है। इसका अर्थ यह भी है कि कोई भी सबसे निम्न जाति का होना नहीं चाहता। इसका कारण भी ज़मीन्दारी प्रथा ही है। इनके कारण ही सभी के मन में वर्ण व्यवस्था साबित हुई। देश विकास की ओर चलने पर भी जनता के मन में जाति संबंधी विचार सशक्त रूप से बसते है।

भारतीय संस्कृति में जाति व्यवस्था बहुत पहले से ही कायम थी। जाति के आधार पर व्यक्ति को परखना एक सामान्य कार्य बन गयी थी। इसी प्रथा के कारण कुछ लोगों को ऐसा लगा कि वे गुलाम बनकर जीना है। यह विचार बचपन से लेकर उनके मन में रूढग्रस्त हो गए। ऐसी स्थिति में आत्म विश्वास की कमी होना स्वाभाविक है।

'सबसे उदास कविता' नाटक में भी स्वदेश दीपक ने दलितों के संघर्षों को चित्रित किया है। यहाँ 'अपूर्वा' नाम के पत्रकार ने दलितों को अपने अधिकार के बार में समझाने की कोशिश करती है। वह स्वयं उनके नेतृत्व में आती है। क्योंकि बिना एक अच्छे नेतृत्व के कोई भी प्रतिरोध विजय हाज़िल नहीं कर सकता। नाटक में चित्रित दलितों को अपने अधिकारों के बारे में कोई ज्ञान भी नहीं। इसी कारण उच्च लोग उनका शोषण करते है। अपने अधिकारों पर अज्ञान होने के कारण अगर पुलीस वाले भी अन्याय के पक्ष स्वीकार कर दलितों पर अधिकार साबित करने की कोशिश करे तो भी वे कुछ नहीं करते क्योंकि वे उनसे डरते है। इस प्रकार के डर का कारण भी अज्ञता है।

"अपूर्वा: हाँ। सफेद कोट। बहुत डरते हैं देश में लोग वर्दी से एक पुलीस वाला दसियों आदमियों को थापड़, जूतो और लाठी से पीट डालता है। और चुपचाप खड़े रहा हे लोग। विरोध बहुत बढ़ जाए तो सरकार फौज को घुमा देती है सड़कों पर फ्लैग मार्च नहीं डरते लोग आदमी से। दहशत है तो सत्ता और सरकार की प्रतीक वर्दी से" ।

इस प्रसंग में अधिकारियों के प्रति लोगों के अकारण भय का चित्रण मिलते है। विशेषकर ऐसी समस्याओं का सामना दलितों को ज्यादात्तर करना पड़ेगा। क्योंकि वे समाज के सबसे निम्नवर्गीय लोग है।अगर उनकी तरफ से प्रतिरोध के कोई शब्द निकले तो उसे पैदा होते ही मारना एक आदत बन गया है। अपने सत्ता और अस्मिता के बारे में दलितों को अवगत कराना इसका एकमात्र उद्देश्य है। अपूर्वा उसी प्रकार नाटक में दलितों के जीभ बन गई है।

1.2 सरकार द्वारा शोषण

नाटक में सरकारों द्वारा होनेवाले दलित शोषण को भी चित्रित किया है। जब निम्नवर्ग के किसी को समस्या होती, तब शासन करनेवाले आकर सान्त्वना देती और उनको सभी सहायता प्रदान करने की वादा करते। मगर वे कुछ कहीं करते। ऐसे लोगों के प्रति भी लोग कुछ नहीं करते। इस प्रकार साधारण जनता पार्श्वकेन्द्रित हो गए है। ऐसे लोगों को भी हम दलित कह सकते है। इन पार्श्व केन्द्रित लोगों में ज्यादातर लोग जाति से भी दलित होगे। नाटक में ऐसे नेताओं की झूठे वादाओं को ही नहीं, बल्कि दलितों के इस के विरुद्ध प्रतिरोध भी चित्रित किए है। 'सबसे उदास कविता' नाटक के नरेन के प्रसंग से दलितों के संघर्ष एवं समस्या सामने आते है। डो. सुकांत से नरेन का कथन इसका उदाहरण है।

“नरेन :अब कुछ नहीं होने का सुलह सफाई की बातों से जानते है आप उन घोडे से राज्य करने वाले वर्ग के लोगों का मंत्र-पोछे डंडा मुँह में मिठाई डंडा उन्हें नहीं छोड़ता और मिठाई ये नहीं छोड़ते। प्रत्येक लड़ाई में कुछ लोगों का मरना तय होता है। कभी हम कभी शत्रु पक्ष के लोग। जो सशक्त क्रांति को सोचते हैं वे रक्त पात से नहीं डरते"

यहाँ उनके प्रतिरोध को भी चित्रित किया है। जब दलित अपने अधिकार पाने को उत्सुक होते है, तब उच्च लोग भी उस अधिकार को दलितों से छीन लेने केलिए उत्सुक होंगे।

1.3 दलित स्त्रियों का शोषण

दलितों के हालत देश में आज भी शोचनीय ही है। वहाँ दलित स्त्रियों की हालत और भी दैन्य स्थिति में अवश्य है। दलित स्त्रियों को छुआछूत की प्रथा कहकर दूर हटाता है। वहाँ दलित स्त्री को बलात्कार करने में कोई छुआछूत बाधक भी नहीं है। देश में आज शोषित दलित स्त्रियों को संस्था दिन ब दिन बढ़ती जा रही है। उनका शोषण करने का कारण वे अपने जाति से दुर्बल है, साथ हो उनमें प्रतिरोध करने की क्षमता भी नहीं नाटकों में ऐसे दलित स्त्रियों को चर्चा भी खूब हुए है। कुछ दलित स्त्रियाँ अपने समाज के इन विसंगतियों के प्रतिरोध करते है, तो दूसरे कुछ दलित स्त्रियों सब सहन कर अपने नियती को शाप देती हुए जीती है।

'कोर्ट मार्शल' नाटक में कैप्टन कपूर ने रामचंदर को गालियाँ देते वक्त सिर्फ उसको नहीं, उनकी माँ को भी गाली देता है। इसी से यह स्पष्ट होता है कि दलित वर्ग के स्त्रियों को किस मनोभावों से उच्च लोग देखते हैं।

“चिट्टे चूहडे। हराम की सट्ट। तेरी माँ ज़रूर किसी कपूर या वर्मा के साथ सोई होगी”।

एक दलित स्त्री होने के कारण ही उसके अभाव में भी लोग उनको गालियाँ देते हैं। दलित स्त्री की स्थिति पुरुष से भी बुरा है। आज भी दलितों की समस्याओं में दलित स्त्री को विशेष स्थान नहीं देते।

‘सबसे उदास कविता' नाटक में ऐसे दलित एवं उपेक्षित स्त्रियों की स्थिति और अधिकारियों को उनके प्रति मनोभाव को चित्रित किया है। नाटक में डी.एस.पी. अहूजा के आचरण और उनके दलित स्त्रियों के प्रति मनोभाव अपूर्वा के प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है।

"अपूर्वा : सामूहिक बलात्कार करेंगे। गैंग रेप जैसे उस आदिवासी औरत का किया था। आपकी वाइफ तो इतनी सुंदर है। बदबू नहीं आई उस बदसूरत, निर्धन औरत से सुना है आप लोगों को बहुत मज़ा आता है एक असहाय औरत का रेप करने में बढ़ जाता है कुछ इंच पुरुष होने का दंभ और दर्प ”।

उपेक्षित स्त्रियों से ऐसे व्यवहार करने का धैर्य इसलिए है कि उनको प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं। भय के कारण वे कोई शिकायत अधिकारियों के विरुद्ध नहीं करती। ऐसा भी है कि अगर वे शिकायत करती तो भी कारवाई नहीं होंगे। क्योंकि विपक्ष में खड़े अधिकारियों एवं जमीन्दार धनवान लोग है। इनको सज़ा दिलवाने की क्षमता उन दलित स्त्रियों में नहीं। इसलिए आज भी दलित स्त्रियों के विरुद्ध ऐसा क्रूर व्यवहार होती रहती है। देश इक्कीसवीं सदी में पहुँचने पर भी दलितों एवं शोषितों के प्रति जो मनोभाव है उसमें कोई परिवर्तन नहीं। ऐसा भी देख सकता है कि कोई भी उच्च एवं थानेदार स्त्रियों को ऐसी अवस्था थोडी होती। इसलिए जब तक दलित स्त्रियाँ अपने पैरों में काबिल होने केलिए सक्षम बन जाती, जब एक उच्च लोगों के मनोभावों में बदलाव लाते, जब तक स्त्रियों को समाज में तुल्य स्थान मिलते, तब तक ऐसी दुः स्थिति भारतीय समाज में होकर ही रहेगा। निम्न वर्ग के स्त्री के प्रति उच्च वर्ग के स्त्री की मनोभाव भी ठीक नहीं है। उन्हें वे भी पुरुष केलिए निर्मित वस्तु ही समझते है 'सबसे उदास कविता' नाटक के बड़े सरकार की पत्नी के प्रसंग से यह स्पष्ट होता है।

" हाँ! अच्ची लगी थी वह हमारे कुँवर को इसमें अचरज कैसा? नारी सदा भोगने की वस्तु है। वीरों और शासकों केलिए। वीर भोग्य वसुन्धरा । द्रौपदी को भोगा था कि नहीं पाँच पुरुषों ने अभी एक सौकड़ा और भोगना चाहते है। हो गया महाभारत।"

यहाँ सभी स्त्रियों को मिलाकर महिला ने ऐसे कहा है। फिर भी ऐसा होता है. विशेषकर दलित स्त्रियों के साथ उन्हीं पर ऐसे अत्याचार लगातार होती रहती है। नाटक में महिला ऐसे आचरण करने वाले अपने पुत्र की वास्तव में अभिनंदन करती है। उसी समय उन स्त्रियों को भोगने की चीज़ भी समझती है। इससे ऐसा भी कहना पड़ता है कि कभी-कभी एक स्त्री ही दूसरी स्त्री के दुश्मन बन जाती है। परंपरागत धारणाओं से दूर जाना, उसमें जो कमियाँ है उसे दूर करना कुछ लोग नहीं चाहती।

हृषीकेश सुलभ जी के 'अमली' नाटक में भी ऐसे एक उपेक्षित दलित स्त्री का चित्रण किया है। संपूर्ण नाटक अमली नामक एक दलित स्त्री के संघर्षों की कहानी है। उसके जीवन में विवाह से लेकर उत्पन्न सभी संघर्ष नाटक में विद्यमान है। अमली केलिए ऐसी परिभाषा नाटक में दिया है

"मनरौली के अछूत-हरिजन परिवार की अमली"?

इसी से स्पष्ट होती है कि अमली दलित स्त्री है। दलित लोगों के भय का चित्रण भी नाटक में है। जब रमेसर अपनी माँ से बात करता है, तब यह स्पष्ट हो जाता है। रमेसर विरोध का स्वर उठाता है तो भी बुधिया को ऐसा नहीं लगता। वह उन ठेकेदारों से डरती है -
"बुधिया :धीमा बोल बोटा धीमा बोल। बात को पाँख लगते दर ना लगती है। सुन ले केह तो आफत गिरेगो माथ पर"।

यहाँ दलित मां का चित्रण है। उस माँ को खुद की चिंता नहीं, बल्कि अपने पुत्र की चिंता है। दलित होने के कारण अगर पुत्र जमीन्दारों के विरुद्ध कुछ कहा तो खून तक हो। जाने की संभावना है। ऐसा हो गया तो दलित माँ नहीं सहते। दुख हर मो केलिए एक जैसा ही है। एक और बात यह भी है कि पुत्र रहकर भी स्थिति चिंताजनक है। बिना पुत्र या पुरुष के जिन्दगी और भी जटिल हो जाएगी।

'अमली' की जिन्दगी में ऐसा ही होती है। रमेसर जब परदेश जाता है, तब से दलित स्त्री का असली पहचान सामने जाती है। दलित पर अवश्य उस समाज के उच्च लोगों के मन में घृणा भाव है, लेकिन जब अमली निःसहाय बनकर उनके शरण में आती है, तब अमली पर अधिकार साबित करने का चाल बनाता है।

"माटी गाडी' नाटक में भी निम्न, उपेक्षित शोषित स्त्री को चित्रित किया है। वसन्तसेना को अपने पकड़ में लाने की कोशिश करने के बाद मर्यादा की सीमाएं तोड़कर ही विट बात करते है। यहां स्त्री को केवल एक देह ही समझते है।

"विट :अरे मूरख ई धीरज परेस की भाखा ना है। ई है तिरछी बोली सुन वसन्ती। तुम्हारी देह का है? हाट-बाज़ार से खरीदी कवनों चीज़। चाहे रूप वाला हो, चाहे कुरूप-तुम्हारा बेवहार एक जैसा होना चाहिए। फूल की डार पर मोर भी बैठता है, और कडुवा भी तुम हो बेसवा पतुरिया। बेसवा का है? - पोखर है तुम्हारा धरम होता है कि कवनो आदमी से घिन ना करो"।

प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि विट स्त्री को केवल बाज़ार से मांगने वाले चीज समझता है। स्त्री को बिकने या खरीदने में कोई संकोच नहीं वह कभी भी स्त्री के अस्तित्व को मान्यता नहीं देता। इन बातों पर नज़र डालने पर हम यह कह सकते हैं कि हर स्त्री को दलित को कोटी में रखा जा सकता है।

"विट' जैसे पुरुषों के मतानुसार स्त्री को स्वतंत्रता नहीं देना चाहिए। स्त्री को केवल भोगने की वस्तु समझा गया है। स्त्री सौदर्य पर भी वह अपने अधिकार साबित करने का प्रयास करता है। दलित स्त्री को समाज में मान-मर्यादा प्राप्त करने केलिए उनको अपनी क्षमता को दर्शाने का अवसर देनी चाहिए। उनको शिक्षा प्रदान करना है। मजदूरी करते वक्त अच्छा वेतन देनी चाहिए। इन सब के ऊपर उनको यह अधिकार देना ज़रूरी है कि वह एक मानव प्राणी ही है। समाज के नज़रिए में बदलाव लाने पर ही ऐसा संभव हो सकता है।

1.3.1 दलितों द्वारा प्रतिरोध का चित्रण

दलितों पर होने वाले शोषण हर समाज में है। इसका चित्रण साहित्य में भी है। मगर उनके प्रतिरोध को चित्रित करनेवाले साहित्य कम है। वास्तव में दलितों की दुर्बलता को चित्रित कर अधिकारियों के ध्यान आकर्षित करने का समय बीत गया है। आज दलितों को प्रेरणा देने के लिए उनके प्रतिरोध एवं धैर्य को ही साहित्य के केन्द्र बिन्दु बनाना है। ऐसा होने पर ही अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ दलित उनकी यथार्थ शक्ति समझ सकते है। साहित्य में विशेषकर नाटक में दलितों के ऐसे प्रतिरोध को चित्रित किया है।

हृषीकेश सुलभ के धरती आबा नाटक में मुंडा जाति के प्रतिरोध को दिखाया गया है। बिरसा मुंडा के नेतृत्व में वे दिकुओं अंग्रेज़ों एवं ज़मीन्दारों के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं। बिरसा की प्रेरणा से मुंडा लोग प्रतिरोध करने केलिए सक्षम बन जाते हैं। बिरसा के अंतिम कथन में इस प्रेरणा एवं प्रतिरोध का अंश है।

"बिरसा: ..... उलगुलान खत्म नहीं होगा। आदिम खून है हमारा।काले लोगों का खून है यह भूख लांछन अपमान दुख घोडा ने मिल-जुलकर बनाया है इस खून को इसी खून से जली है उलगुलन की आग। यह आग कभी नहीं बुझेगी कभी नहीं ...जल्दी ही लौटकर आऊँगा में" ।

बिरसा के इस कथन में आत्मविश्वास के साथ-साथ प्रेरणा भी है। बिरसा ने धरती आबा बनकर मुंडाओं को प्रेरणा दिया था मगर जब बिरसा की मृत्यु होगी, तब उस •प्रतिरोध की शक्ति नहीं बुझना चाहिए। इसी उद्देश से बिरसा ऐसे आह्वान करते है।

स्वदेश दीपक के 'सबसे उदास कविता' में भी ऐसे दलितों के प्रतिरोध एवं प्रतिशोध देख सकते हैं। पत्रकार अपूर्वा की प्रेरणा से ही दलित लोग जमीन्दार एवं उनके सहचारियों पर प्रतिरोध करते है। जब डी.एस.पी अहूजा जमीन्दार के इशारे में दलित औरतों से नंगे परेड कराते है, तब दलितों के मन के प्रतिशोध एवं असली शक्ति सामने आ जाते है। उस समय दलित के मनोदशा को साबित करने केलिए नाटक के युवक के कथन काफी है। जब चार दलित लड़के मिलकर इस केलिए प्रतिशोध करते हैं तब यह प्रसंग सामने आते है।

"युवक 2 :लोग थोड़ी दूर खड़े थे। चुपचाप देखते। उनकी आँखों में भय नहीं था, गर्व था। औरतों को नंगा परेड कराने वाला केवल चार लड़कों के हाथों..... अपनी शक्ति के बारे में जानकार दलित के चित्रण नाटक के इस अंश में है" ।

साहित्य में ऐसे कई नाटक मिलते है जो दलित के प्रतिरोध को अभिव्यक्त करते है। ऐसे नव बोध प्रदान करनेवाले नाटकों से अवश्य दलितों को एक नए ऊर्जा मिलता भी है। समकालीन युग के पहले साहित्यकारों ने सिर्फ दलितों पर चलानेवाले शोषण और उसकी भीषणता एवं दारुण स्थिति का वर्णन किया था तो समकालीन युग में आकर उन अत्याचारों के खिलाफ दलितों के मन के प्रतिरोध एवं प्रतिशोध को भी चित्रित कर रहे है ताकि नई पीढ़ी इससे प्रेरणा प्राप्त करके आगे के भविष्य केलिए कोशिश जारी रखें। इस उद्देश्य से देखें तो स्वदेश दीपक के नाटक नयी पीढ़ी को रास्ते दिखाने एवं धैर्य प्रदान करने में सफल हैं। उनके नाटक वर्तमान युग के लिए एकदम प्रासंगिक है।

1.4 निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जाता है कि दलितों की स्थिति आज के समाज में भी आशापूर्ण नहीं। मगर उनके पक्ष से समकालीन समय में काफी प्रतिरोध का शब्द उठाते भी है। आज सरकार दलितों के प्रतिरोधी स्वर को तिरस्कृत कर आगे नही जा सकती। आजकल दलित उनके आधिकारों के प्रति

जानकारी भी रखते है। फिर भी कुछ प्रान्तों में दलितों की स्थिति में अब भी परिवर्तन नहीं आया है। कुछ उच्च वर्गीय लोगों के मन में आज भी वही छुआछूत छिपकर रहते है। उसी मनोभाव को बदलने पर दलितों की स्थिति और भी बेहतर हो जाएगा।

एक ज़माना ऐसा था कि दलित उनके ऊपर करनेवाले सभी प्रकार के शोषणों को सहन करके जीते थे। लेकिन वर्तमान युग में स्थिति बदल गयी है। आज दलित लोग शिक्षित है इसलिए उनमें आत्मविश्वास की कमी नहीं है। वे अपने हक के बारे में जानकार भी है। इसलिए शोषकों के खिलाफ आवाज़ उठाने और अपने साथियों के भविष्य केलिए कुछ प्रतिरोध करने में डरते नहीं है। यह बिलकुल ही सकारात्मक पक्ष है। इससे दलितों के शोषण समाप्त हो जाने की संभावना बनी रहती है। समकालीन नाटकों में इस तरह का चित्रण उपलब्ध है। 'कोर्ट मार्शल' के रामचंदर, 'अमली' की अमली और 'सबसे उदास कविता' की अपूर्वा प्रतिरोध करनेवाले सशक्त दलित कथापात्र के उदाहरण हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सबसे उदास कविता - स्वदेश दीपक
2. अमली - हृषीकेश सुलभ
3. माटी गाड़ी - हृषीकेश सुलभ
4. कोर्ट मार्शल - स्वदेश दीपक
5. धरती आबा- हृषीकेश सुलभ

समकालीन लेखिका नासिरा शर्मा की कहानियों में बच्चों की समस्याओं

डॉ. श्रीकांत के
असिस्टेंट प्रोफेसर
अल अमीन कॉलेज

बच्चों का मानवाधिकार वर्तमान समाज का एक प्रमुख मुद्दा है । आज का बालक कल का नागरिक, युवक, नेता, और मार्गदर्शक बनेगा । इसीलिए बच्चों को किसी देश या समाज का भविष्य कहा जाता है । अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बच्चों के अधिकार की चर्चा आजकल सर्वव्यापी है । मनोहर बाथम के अनुसार- "बच्चों को सच्चे संस्कार देना, अनुशासित और चरित्रवान बनाना, उन्हें मूलभूत सुविधाएँ देकर अच्छी शिक्षा देना हर माँ-बाप के साथ-साथ ही समाज और राज्य का भी कर्तव्य है क्योंकि यह उनके मानवाधिकारों की बुनियाद है । जितनी सशक्त यह बुनियाद होगी उतनी ही आनेवाले भविष्य में मानवाधिकारों की इमारत बुलन्द बनेगी ।"1 उपर्युक्त कथन से बच्चों के अधिकार से यही अर्थ निकाला जाता है कि बच्चों को विकसित होने, सुरक्षित और स्वतंत्र रहने का पूरा अधिकार है ।

आजकल बच्चों को सामाजिक सुरक्षा की जरूरत है । क्योंकि समाज में आज भी बच्चों के प्रति घातक रूप से शोषण की प्रवृत्तियाँ मौजूद है । इसके अतिरिक्त बालकों के प्रति अन्याय व अत्याचार हो रहा है और उनके अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है । बालमज़दूर या बालश्रम, बालविवाह, बच्चों के बलात्कार, यौन शोषण, भूख की समस्या यह सब उनके खिलाफ होनेवाले अत्याचार है ।

बालमज़दूर

आज विश्व भर में बालमज़दूरी को खत्म करने का अभियान ज़ोरों पर है । फिर भी बालमज़दूरों का पूरा जीवन समस्याओं से घिरा रहता है । उषा पाहवा के अनुसार "पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ भी बालमज़दूरी प्रथा के कारण बनती है । दरअसल बालमज़दूरी को बढ़ावा देने में उद्योगपतियों, पूँजीपतियों की एक महत्वपूर्ण भूमिका है, जो कम मज़दूरी देकर अधिक काम लेने तथा मनमाना शोषण करने के विचार से बालमज़दूरों को अपने यहाँ काम पर रखते है ।"2 बालमज़दूरी को नियंत्रित करनेवाले कई ऐसे कानून है जैसे बंधुआ बालश्रम अधिनियम 1933, बाल रोज़गार अधिनियम 1938, भारतीय फैक्टरी अधिनियम 1940 तथा राष्ट्रीय बालश्रम नीति 1987 आदि । ये सभी अधिनियम बालमज़दूरों की सेवाओं, कार्य दशाओं, कार्य के घंटों एवं मज़दूरी आदि को नियमित करते है । इसके अतिरिक्त नोबेल पुरस्कार विजेता कैलाश सत्यार्थी बाल अधिकारों की लड़ाई में झोंक देनेवाले व्यक्ति है जिन्होंने 1983 में अपना ग़्रुग्र् बनाकर बचपन बचाओ आन्दोलन की शुरुआत की और बालमज़दूरों को आज़ाद करने के लिए व्यापक तौर पर आन्दोलन चलाया । आँकडे के अनुसार "आज ग़्रुग्र् से 70

हज़ार से ज़्यादा लोग और 750 संगठन जुडे हुए हैं । भारत के 11 राज्यों में काम करनेवाली इस संस्था ने 365 गाँवों को "चाइल्ड फ्रेंडली विलोज़" में बदला है । संस्था बच्चों के लिए कानूनी लड़ाई लडती है ।"3 प्रस्तुत संगठन के ज़रिए हज़ारों बालमज़दूरों को कालीन, कांच, ईंट, भट्टो, घरेलू बालमज़दूरी जैसे खतरनाक कामों से मुक्त कराया । गाँव से धीरे-धीरे बालमज़दूरी समाप्त की जाती है और बच्चों के स्कूल में नाम लिखवाया जाता है । लेकिन इतनी सुविधाओं के बावजूद बच्चों की जीवन में सुरक्षा का उजाला लाने का सपना पूरा होने के करीब भी नहीं पहूँच रहा । यहाँ बच्चे घरों-दूकानों में काम करते हैं, सडकों पर भीख माँगते हैं । यह सिर्फ कैलाश सत्यार्थी की नहीं, सरकार और समाज की भी जिम्मेदारी है कि वे अपने बच्चों के दुख से नज़र न फेरे और उनकी बेरंग ज़िन्दगी में थोडी रोशनी लाने की कोशिश करें । मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, अलका सरावगी, नासिरा शर्मा जैसी समकालीन लेखिकाएँ भी बच्चों के भविष्य एवं उनकी सुरक्षा से आशंकित है । नासिरा शर्मा ने अपनी रचनाओं में बालकों के अधिकारों का चित्रण अलग ढंग से किया है ।

नासिरा शर्मा ने 'फिर कभी' कहानी में बालमज़दूरी का दयनीय चित्रण किया है । यह मीनाक्षी, मुन्नी, कल्लो, सलीमा, राखी और सपना जैसी असहाय और अधिकार हीन बच्चियों की कहानी है जो सडकों पर घूमती हैं। सब बच्चियाँ अनाथ हैं। उनके भी घर और माता-पिता रहे हैं । लेकिन वे अनाथ बन गयी । मीनाक्षी उस ग्रूप की नेता थी । वह सबसे बडी भी थी । रेलवे स्टेशन में इन छह लडकियों से काम करनेवाली एक स्त्री है । वह बच्चों को सामान देती है, उनसे बिकवाती है और उससे पैसा वसूल करती है । कुछ पैसे उनको तनख्वाह के रूप में देती भी है। मीनाक्षी और अन्य लडकियाँ मिलकर स्टेशन में पहूँचकर अपना काम करती है । शबाना कागज़वाला साबुन बेचने के काम में लगी है । मुन्नी रेवड़ी, मूँगफली आदि बेचने का काम करती है । कल्लो जूता पॉलिश करती है । इस तरह ये बच्चे अपनी मेहनत की कमाई से जीते हैं। लेकिन इतनी मेहनत करके कम उम्र में पैसा कमाने पर भी उनकी ज़िन्दगी सुरक्षित नहीं है । जो उनसे काम करवाती है, वह अच्छी तरह जानती है कि इन बच्चों से काम करवाने पर कोई उसके खिलाफ शिकायत नहीं करेगा।

ये बच्चे अपने ऊपर हो रहे अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने में भी सक्षम नहीं हैं । अगर शिकायत करें तो भी उनको सुननेवाला कोई नहीं रहेगा। पुलीस जनता के अधिकारों को सुरक्षित रखने में सर्वथा प्रतिबद्ध है । लेकिन इन बच्चों को पुलीस की ओर से भी कोई मदद नहीं मिलती । एक दिन बडे नेता का अटैची केस गायब हो गया । पुलिस प्लाटफार्म पर लोगों की तलाश करने लगी । ऐसे मौकों पर पुलिस की नज़र हमेशा इन बच्चियों पर पडती थी । किसी न किसी पर चोरी का आरोप करके गिरफ्तार करने की कोशिश में पुलीस उन छह लडकियों को, बिना पूछताछ के, एक दो डंडे, कमर-

हाथ पर लगाए, सबको हॉक स्टेशन के बाहर ले गए । इन बच्चों की वकालत करनेवाला कोई नहीं था । वास्तव में नेता जी वह अटैची लाया ही नहीं था । वह उसे गवर्नर हाउस में छूट आया था । इसलिए बच्चों को थाने से भगा दिया गया, नहीं तो चोरी के जुर्म में उन्हें पकडकर रखते । पुलीस को केवल दोषी ठहराने के लिए कोई मिलना तो चाहिए । यहाँ मीनाक्षी मन ही मन चाहती है कि "इन सिपाहियों के हाथों में हथकडी पहना दे ताकि फिर यह कभी किसी बच्चे को बेकसूर कानून के कटघरे में लाकर खड़ा न कर सके, मगर वह अपनी इच्छा दबाकर बाहर निकली और सर को झटके से हिलाकर बोली, "फिर कभी।"4 मीनाक्षी जानती है कि वह इस समाज के व्यवहार के विरुद्ध कुछ नहीं कर पायेगी । इसलिए वह अपने आप को "फिर कभी" का दिलासा दे रही है।

भारत के संवैधानिक अधिकार में कहा है कि बच्चों को विशेष देखभाल उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी समाज, परिवार और अधिकारियों की होगी । कठिन परिस्थितियों में भी संरक्षण सबसे पहले बच्चों को ही दिया जाएगा । प्रत्येक बच्चे को उपेक्षा, क्रूरता और शोषण के सभी रूपों से संरक्षण मिलेगा।

नासिरा शर्मा जी की 'शर्त' कहानी में भी बालमज़दूर की समस्याओं का चित्रण है । कहानी का मुख्यपात्र पार्वती अपनी माँ के साथ मालकिन के घर में काम पर जाया करती थी । फिर धीरे-धीरे अकेले ही सब काम संभालने लगी । पार्वती स्कूल नहीं जा पाएगी, यह जानकर मालकिन ने उसे खुद पढ़ाने का निर्णय ले लिया । पार्वती घर के काम में जितनी तेज़ थी, पढ़ाई में भी उतनी ही मंद निकली । उसे पढ़ने में बिलकुल दिलचस्पी नहीं थी । बहुत दिनों की कोशिश के बाद मालकिन ने हार स्वीकार कर ली । लेकिन पार्वती ने मालकिन से विभिन्न प्रकार के पकवान बनाने का काम आसानी से सीख लिया । इस वक्त मालकिन को लगता है कि "हर व्यक्ति का अपना मोर्चा अपनी लडाई अपना सपना होता है और उसको पूरा करने का उसको पूरा अधिकार है।"5

कुछ सालों बाद पार्वती की शादी हुई । पार्वती और पति नन्कू दोनों ने मिलकर ढ़ाबा खोल दिया और अपनी जिन्दगी पुन: शु डिग्री कर दी । पार्वती मज़दूरी करती थी, मालकिन के घर में उसे पूरी स्वतंत्रता भी मिली थी । उसकी मालकिन उतनी अच्छी और मानवीय भावना से भरी औरत रही जिससे उसको जीवन में आगे बढ़ाने का प्रोत्साहन और हौसला मिलता है ।

भूख की समस्या

भूख की समस्या बच्चों के लिए सबसे बडी समस्या है । इसकी वजह बच्चे गलतियाँ करने के लिए तैयार हो जाते हैं । वास्तव में समाज ही इसका उत्तरदायी है । नासिरा शर्मा की एक और कहानी 'गलियों का शहज़ादे' में उन लावारिस बच्चों पर प्रकाश डालती है जो संविधान में बताई गई सुरक्षा के

सारे प्रावधान के रहते हुए भी अपने अधिकारों से वंचित एक जिन्दगी जीने को मज़बूर हैं। सरकार ने "गरीबी हटाओं" जैसी योजना बनायी थी। फिर भी गरीबी दूर करने में सरकार समर्थ नहीं हुई । प्रस्तुत कहानी में भूख से पीडित बच्चों की जिन्दगी का चित्रण लेखिका करती है।शहर की गलियों में फिरनेवाले बच्चे भूख से पीडित है । उनकी रोज़ी-रोटी का सिलसिला कूडे के ढेर से जुड़ा हुआ था। इन बच्चों के लिए कोई ठौर ठिकाना नहीं था । रात को जहाँ सोने के लिए जगह मिल जाता था वहीं सो जाते थे । यह नन्हें, मनू जैसे बच्चों की जिन्दगी की कहानी है । इन बच्चों के लिए पेट का सवाल महत्वपूर्ण है । वे अपनी बुनियादी ज़रूरतें जैसे स्वास्थ्य, भोजन, पानी आदि से वंचित है । वास्तव में उनकी ज़रूरतों को हर हालत में पूरा करना प्रत्येक राज्य का कर्तव्य है ताकि बच्चे जिम्मेदार नागरिक बन सके और रोज़ी रोटी कमाने के लिए अपने पैरों में खडे हो सके।सडकों में जिन्दगी बितानेवाले बच्चों की ज़िन्दगी सुरक्षित नहीं है । कहानी का नन्हें कूठे खंगालने के काम में धीरे-धीरे अभ्यस्त हो रहा था । उसके साथ उसमें नशीली चीज़ों के उपयोग की आदत पड गयी थी । कूडे से मिलनेवाला गोंद और ज़िराक्स इंक का मिश्रण उसकी मुलायम आँतों पर असर कर रहा था । इस तरह उसका बदन शिथिल हो गया और वह काम करने लायक भी नहीं रहा । दूसरे बच्चे नन्हें के इस हाल को देख उदासीन हो जाते हैं। नन्हे को समझाने और सुधारने के लिए उसके दोस्त सक्षम भी नहीं रही।

एक दिन शहर में चुनाव की घोषणा हुई । राजनीतिज्ञ तरह-तरह के वादे जनता से करते आ रहे थे । इसके फलस्वरूप नगरपालिका की गाडी जगह-जगह के कूडे के ढेरों को समेटने लगी, नाली नापदानों की सफाई होने लगी, एक-एक करके शहर के घूरे गायब हो गये । उनकी जगह सुंदर लोहे के टीन के गहरे-गहरे कूजे दान रख दिए गए । जहाँ तक कुत्ते और बच्चे पहूँच नहीं पाते थे । कुत्तों से परेशान लोग जब शिकायत करने लगे तो कुत्ते पकडनेवाले आ गए और उसे पकडकर ले गए । अब बाकी था वे लावारिस बच्चे, जिनकी जिन्दगी उन कूडों से जुडी थी । लेखिका ने उन बच्चों की हालत इस प्रकार चित्रण किया कि "इस साफ सुधरे माहौल में उदास पाँच बच्चे खाली पेट बैठे सोच रहे थे कि काम माँगने कहाँ जाये ? पूँजी पास नहीं जो रेडी लगाये ? उनके नन्हे-मुन्ने दिमाग फिक्र के बोझ से दुखने लगे थे। खासकर उस जुलूस को देखकर जिसमें बालश्रमिकों पर रोक लगाने की माँग की जा रही थी।"6 इस तरह के जूलूस निकालकर नारे लगाने से वाकई बच्चों की स्थिति सुधरेगा नहीं। हमारे समाज में आज भी मौलिक अधिकारों से वंचित बच्चे है । पौष्टिक आहार की प्राप्ति, स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं की सुलभता तथा शिक्षा, ये सब एक साधारण बच्चे के ऐसे अधिकार है, जिन्हें किसी भी स्थिति में टालना नहीं चाहिए ।

यौन शोषण

आजकल बालिकाओं के प्रति यौन अत्याचार में बढ़ौती हुई है। समाज का अपचय इतना हो रहा है शैशवावस्था में ही बच्चियों के ऊपर बलात्कार होता है । ऐसे किसी भी हमले की शिकार हो जाने के बाद उस बच्ची की स्थिति बहुत दर्दनाक हो जाती है ।

नासिरा शर्मा की 'बिलाव' कहानी में पिता द्वारा बालिका पर किए जानेवाले बलात्कार की समस्या पर विचार किया गया है । पिता बलबीर एक दिन नशे में आकर अपनी बडी बेटी मैना-जो सिर्फ बालिका थी - की इज्जत लूट लेता है । उस वक्त घर में और कोई नहीं था । जब उसकी माँ सोनामाटी काम से वापस आयी तो अपनी बेटी की हालत देखकर आक्रोश से भर उठी । वह बलबीर को सचमुच मार डालना चाहती थी । पर यह संभव नहीं हुआ।

इस हादसे से मैना का मानसिक संतुलन बिगड जाता है। वह आत्महत्या करने के लिए उद्यत हो जाती है । इसलिए वह घर से भाग निकली । पुलिस की तलाशी पर उसे रेल की पटरी में पडी मिली । वह सोचती है कि आत्महत्या के सिवा उसकी सामने ओर कोई रास्ता नहीं है। लेकिन दुख की बात यह है सोनामाटी की लाख कोशिशों के बावजूद उसकी दूसरी बेटी को भी वह बच नहीं पाती है । जब वह घर से बाहर जाती है तो उसकी छोटी बेटी भी पडोसी के द्वारा बलात्कार की शिकार हो जाती है।

उपर्युक्त कहानियों के विवेचनोपरान्त यह व्यक्त होता है कि समाज में कोई भी बच्ची सुरक्षित नहीं है । वे इतनी असुरक्षित है कि घर के नौकर, रिश्तेदार, मित्र तथा कभी-कभी अपने परिवार के सदस्यों से भी उनपर अत्याचार होता है । भारतीय संविधान में 18 वर्ष के कम उम्र व किशोरों को वे सभी अधिकार दिए गए हैं जो उनकी बुनियादी ज़रूरतों, पोषण, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि को पूरा करने लायक है । लेकिन बच्चों से संबन्धित जितने भी अधिकार है सभी का हनन किसी न किसी रूप में समाज में होता रहता है ।

समकालीन महिला कहानी लेखन में ट्रान्सजेंडर के अधिकार

डॉ. सौम्या एम बी
अध्यापिका , जी एच एस एडकोचि

पुराने ज़माने से हिज़डों के प्रति समाज की एक हीनदृष्टि रही है । समाज में उनकी कोई पूछ नहीं थी । लिंग के आधार उन्हें मुख्यधारा समाज से उसे दूर रखा गया है । इसलिए वे मुख्यधारा से अलग रहकर एक टोली में रहते हैं । वास्तव में उसे समाज में एक नागरिक के रूप में जीने का अधिकार है । समाज में हमेशा असामाजिक कहकर कुछ वर्गों का शोषण होता रहा उनमें हिजडे भी आते हैं । दिव्या जैन के अनुसार "हिजडे हमारे समाज के अद्‌भुत अंग है । सेक्स की दृष्टि से वे न तो पुरुष होते हैं, न ही नारी । समाज इन्हें हास्यास्पद समझता है । लोग इनकी खिल्ली उडाती है।"1 पहले हिजडों का पहचान पत्र या राशनकार्ड नहीं था। लेकिन अब स्थिति बदल गयी । आज हिज़डों को तीसरे जेंडर (Third Gender) के नाम से अभिहित किया गया है । उनके अपने तौर-तरीके और कायदे-कानून होते हैं । कानून के प्रावधान होने पर भी हिज़डे असुरक्षित विभाग है ।

आज हिजडों को समाज में समानता का अधिकार है।भारतीय संविधान उन्हें नागरिक अधिकार प्रदान करता है। आश्चर्य कि बात यह है कि इतने हाशिएकृत होने पर भी हिजडों की श्रणी से एक व्यक्ति मेयर भी बन गयी ।सामान्य जनसमुदाय की तुलना में हिजड़े कभी भी पिछड़े नहीं है, बल्कि आगे है।वे मेहनत करके कमाते हैं।पहले पुल्लिंग और स्त्रीलिंग की कोटी में न आने के कारण वे साधारण जनता के समान शिक्षा और नौकरी के क्षेत्र में समानता के अधिकारों से वंचित थे।समाज उन्हें पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के अतिरिक्त तीसरे लिंग के अंतर्गत रखते हैं।आज उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, और नौकरी करने का अधिकार दिये गये हैं।हिजडों की मुख्य समस्या जेन्डर या लिंग की है। वह न स्त्री है, और न पुरुष । हिजडों केलिए पारिवारिक जीवन केवल कल्पना है ।क्योंकि हिजडों की शादी नहीं, संतान नहीं ।अतः पारिवारिक जीवन से तिरस्कृत होकर हिजडा का जीवन किसी हिजड़ा मंडली के साथ होता है।ऐसे हिजड़े कभी-कभी भीख मांगते हैं या देह व्यापार करते हैं ।

लिंग के आधार पर हिजडों के प्रति भेदभाव परंपरा से चला आ रहा है ।हिजडों की त्रासदी पर विचार करते हुए जस्टिस के.एस. राधाकृष्णन कहते हैं कि"Recognition of transgender as a third gender is not a social or medical issue but a human rights issue."2 अतः हिजडों की समस्या को मानवाधिकार की दृष्टि से परखना अनिवार्य है। समाज में हिजडों के भेदभाव को रोकने के लिए सन् 2008 April में 'द सेक्स डिस्क्रिमिनेशन एक्ट' अर्थात् यौन भेदभाव अधिनियम पारित किया गया है। यह अधिनियम उन्हें लिंगीय समानता देता है। हिजडों के लिए इतने कानून के प्रावधान होने पर

भी वे हाशिएकृत है। समाज उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उनके साथ व्यवहार करने के लिए समाज हिचकता है।इसलिए हिजड़े अपने अस्तित्व एवं अधिकार के लिए लडते हैं।समकालीन कहानी में तीसरी लिंग या योनी के हिजडों के जीवन का अभिलेख मिलता है ।

समकालीन लेखिकाओं में निरुपमा श्रीवास्तव, उर्मिला शुक्ल, चित्रा मुदगल आदि लेखिकाओं ने इसी विषय को लेकर अपनी लेखनी चलाई । हिजडों की समस्याओं पर लिखी कहानियाँ बहुत कम है । अत: हिजडे के दुख-दर्द पर लिखी कहानियों का स्वागत होना चाहिए । निरुपमा श्रीवास्तव ने 'अमीबा' कहानी हिज़डे यानि तृतीय पंथियों पर लिखी है । हिजड़े वेश्यावृत्ति करते हैं । लेकिन सभी हिजडे वेश्या वृत्ति नहीं करते । इनमें से कुछ शादी ब्याह के समय, बच्चे के जन्म के समय या किसी की मौत हुई तो तब नाचते-गाते है । कुछ घर के काम करते हैं। तो कुछ भीख माँगकर ही पेट पालते हैं । इसी का चित्रण निरुपमाजी ने अपनी कहानी में उकेरा है । हिजड़े भगवान से प्रार्थना करते हैं कि उनकी एक आँख फूट जाए या एक हाथ कट जाए । तब कम से कम उन्हें भीख माँगने का जरिए तो होगा । हिज़डों की मुख्य समस्या तो आर्थिक है । इसलिए वह ऐसे काम करने के लिए विवश हो जाते हैं । सुबह होते ही रंडी के समान उन्हें सजना पडता है । कोई नकली बालों का जूडा सिर पर बाँधता है तो कोई फूलों के गजरे । कोई पैरों में घूँघ डिग्री बाँधता है ।लोग उनकी स्त्री-वेशभूषा, उनकी अदाओं को देखकर उन्हें भी भोग्य ही समझते हैं । लेकिन कोई उनकी ज़िन्दगी और उनके दर्द को समझने का प्रयास नहीं करता । हिजड़ों का कहना है कि "मनुष्य जाति का सारा आधार 'भोगने' की बात पर बंटा है । पेशा करनेवाली औरत को सारा समाज नफ़रत से देखता है । दिन को उस पर थूकता है और रात उसी के साथ बिताता है । उसकी कोई इज्जत नहीं है, फिर भी वह मनुष्य जाति में शामिल है .....क्योंकि वह औरत है .... मर्द उन्हें भोग सकता है ।"3 इस तरह लोग उन्हें केवल उपभोग की चीज़ मानते हैं । नारी रूप धारण कर मनचलों के मन में भोगने की इच्छा निर्माण कर कुछ पैसे झटक लेने में ही वे अपनी सार्थकता समझते हैं । हिजडों की सबसे विडम्बना यह है कि उनका कोई नाम नहीं होता । कभी कभी जानवरों के नाम ही रखते हैं नहीं तो चन्दा, रूपा, बन्नो जैसे नाम जो उन्होंने अपनी सुविधा के लिए रखे है । उनकी अपनी भाषा होती है । उसमें अधिकांश कामुक शब्दों का प्रयोग होता है । उनसे कोई हमदर्दी बताए, उसे अपने घर में काम दिलाए तो लोग उन्हें नाम रखते हैं । लोग अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए कभी स्वीकार करते है तो कभी अस्वीकार । इसलिए दुनिया में वे उपेक्षित रह गए है ।

लेखिका ने अपनी कहानी में एक घटना का जिक्र करते हुए हिजडों की वास्तविक जिन्दगी को हमारे सामने प्रस्तुत किया है । वहाँ एक टोली थी जिसमें नौ हिजडे रहते थे । एक दिन एक सेठ ने चन्दा नामक हिजडे को बुलाया और दो सौ रुपये देकर हरे कपडे में लपेटी हुई एक गठरी दी । उसमें एक नवजात गोरा मासूम बच्चा था । बच्चा न लूला था, न लंगडा, न अंधा न बहरा । उन लोगों ने उसे इसलिए दिया कि वह तृतीय पंथी था । लोकलाज के कारण उन्होंने उसे हिजडों को दे दिया पर यह क्यों नहीं सोचा कि वे उस बच्चे के कैसे पालेंगे ? बच्चे के पिता ने कहा कि "सारी मनुष्य जाति स्त्री और पुरुष में बंटी है । तुम इनमें से किसी वर्ग में नहीं आती हो तो क्या करें?"4 इस तरह के कई सवाल लेखिका ने हमारे सामने खडा कर दिया है । वास्तव में सेठ का नया जन्मा बच्चा हिजड़ा था । इसलिए उसे स्वीकार करने के लिए सेठजी का मन तैयार नहीं था । उस बच्चे को कोई बीमारी नहीं थी । वह एक स्वस्थ मासूम बच्चा था ।लेकिन सेठ को वह चाहिए नहीं था । समाज में हिजडों के प्रति उपेक्षा एवं घृणा का जो भाव है वह इस कहानी में प्रकट है ।

उर्मिला शुक्ल की 'मैं फूलमती और हिजडे' कहानी में एक ओर वेश्याओं की और दूसरी ओर हिजडों की समस्याओं पर विचार किया गया है । फूलमती के पति बिहारी के कारण वह वेश्या बन गयी । अब फूलमती एक धंधेबाज औरत के रूप में ख्यात हो चली थी । बडे-बडे रसूखदारों से उसका संबन्ध बन गया था। एक दिन उसके पास ग्राहक बनकर हिज़डा आया था । फूलमती ने सोचा कि क्या फर्क है इसमें और अन्य मर्दों में ? अन्त में उसे पता चला कि वह उससे प्यार करने लगी है । उसके साथ उसे ऐसा लगता है कि वह रात उसके जीवन की यादगार रात बन गयी है । इतनी कोमलता, इतनी स्निग्धता और ऐसा प्यार ने फूलमती को मोह लिया था । उसने पहली बार जाना कि प्रेम क्या होता है । प्रेम, जिसके धोखे में उसने बिहारी का हाथ थामा था, वह तो अब उसे मिल रहा था । सारी दुनिया जिसे हिजडा कहती थी फूलमती के लिए वही संपूर्ण पुरुष था । वह कहती है कि "वह पुरुष जिसने उसे प्यार दिया, सम्मान दिया और अधिकार दिया उसे उस दलदल से बाहर निकाला, जिसमें तथाकथित पुरुष ने धकेल दिया था उसे"5 यहाँ फूलमती एक हिजडे से प्रेम करती है जिसे समाज के लोग नफरत करते हैं । हिजडे को भी प्रेम करने और सहानुभूति प्रकट करने का एक विशाल हृदय है । क्योंकि वह भी इसी समाज का अंग है । प्रस्तुत कहानी में हिजडों के जीवन संबंधी अनेक घटनाएं हमें देखने को मिलता है।

संक्षेप में कहें तो समाज में सभी व्यक्तियों को समान अधिकार सभ्य समाज का लक्षण है।इस परिप्रेक्ष्य में हिजडों को भी इस समाज में स्वतंत्र रूप से जीने का अधिकार है।हमारे संविधान में इसका प्रावधान दिया गया है।फिर भी समाज में उनके शोषण के अनगिनत पहलू विद्यमान है। लिंगीय भेदभाव इसका मुख्य कारण है।वास्तव में उनके लिंगभेद की समस्या को मानवाधिकार की दृष्टि से देखना

चाहिए। लिंगभेद से युक्त सामाजिक भेदभाव की समस्या समकालीन कहानी का एक प्रमुख मुद्दा है। समकालीन कहानी लेखिकाओं ने इस मुद्दे को अपनी कहानियों में प्रबलता के साथ उजागर किया है। निरुपमा श्रीवास्तव और उर्मिला शुक्ल की कहानियाँ इसके मिसाल है।इन लेखिकाओं ने हिजडों के भेदभाव के कारणों, विभिन्न आयामों एवं दिशाओं को समान मानवीय प्रतिमानों के आधार पर कसने का प्रयास किया है।

<u>सन्दर्भ</u>

1.दिव्या जैन,हव्वा की बेटी, पृ.सः121
2.जस्टिस के.एस.राधाकृष्ण,द हिन्दु,रविवार मार्च,2015
3.निरुपमा श्रीवास्तव,विकलांग जीवन की कहानियाँ,पृ.संः66
4.वही
5.उर्मिला शुक्ल,में फूलमती और हिजडे, कथादेश मार्च,2011,पृ.संः58

समाकालीन कहानियो में किन्नर विमर्श

डॉ. सफीना एस ए
अतिथि शिक्षक
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय , तिरूर केन्द्र

हमारा समाज किन्नरों को अत्यंत नकारात्मक एवं हेय दृष्टि से देखते हैं यह नकारात्मक दृष्टि सबसे पहले उनको अपने ही परिवार में झेलना पड़ता है । शारीरिक कमी या नपुंसकता जैसे यौन न्यूनताओं के कारण उनकी जिंदगी नरक तुल्य बन जाती है । शादी , बच्चों की पैदायिश आदि मांगलिक अवसरों में बधाईयाँ गाकर आशीर्वाद देकर हमसे कुछ रुपए लेकर विदा हो जानेवाले किन्नरों की जीवन त्रासदी जानने का प्रयास वास्तव में हम कभी नहीं करते हैं । किन्नरों की जिंदगी वेश्यावृत्ति करके या फिर भिक्षावृत्ति से जीवन यापन करने को विवश है लेकिन आज किन्नर अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं जिसके परिणाम स्वरूप सुप्रीम कोर्ट ने किन्नरों को कानूनी पहचान देने का आदेश दिया हैं । साहित्य में भी किन्नरों को मुख्यधारा में लाने का प्रयास जारी है ।

किन्नरों पर उपन्यास , कहानी , आत्मकथा आदि साहित्य के सभी विधाओं में चर्चाएँ हो रहे हैं । कहानियों की बात करें तो डॉ. सुमा टी रोडनावर की कहानी '**ओ मेरी प्रिय सजनी चंपावती**' किन्नर समस्याओं पर आधारित एक सशक्त कहानी है । कहानी के शुरुआत में कर्नाटक में 2018 के इलेक्शन की तैयारियाँ हो रही थी और इस बार के इलेक्शन की खासियत यह थी कि किन्नरों को भी वोट करने का अवसर दे रहे हैं तब इस कहानी की 'मैं' को रमेश की याद आती है । रमेश उनके गाँव में रहता था वह उसे दीदी कहकर पुकारता था । काफी दिन के बाद जब वह शहर से गाँव लौट आती है तो उसे यह मालूम हो जाता है कि अब रमेश पहले जैसा बिल्कुल नहीं रहा उसके हाल-चाल , बोलने का तरीका सब लड़कियों जैसी बन गई है "बाजार में मैंने जो नजारा देखा मेरा सिर घूम गया रमेश मटक मटक कर चल रहा था और गाँव के आवारा लड़के उसके पीछे 'ओ मेरी प्रिय सजनी चंपावती' गाते हुए उसे छेड़ रहे थे"[1] । रमेश की इस तरह के शारीरिक बदलाव को देखकर वह बिल्कुल चकित रह जाती है । कहानी में रमेश ठाकुर के लड़के के साथ शारीरिक संबंध भी रखता हैं । ठाकुर के बेटे को एड्स हो जाती है और फिर रमेश उर्फ चंपा इस बीमारी का शिकार हो जाता है । इस कहानी में रमेश के साथ उसके बचपन में एक दुर्घटना घटी थी रमेश के पिता उसके बचपन में ही गुजर गए थे । उसकी माँ बच्चे को पड़ोसी के घर में सौंपकर काम करने चली जाती थी । पड़ोसी शराब के नशे में रमेश से जिस्मानी संबंध बनाता है वह तब पाँच साल का था । शराबी पड़ोसी डरा धमका कर इस तरह

करता था । तब से रमेश में लड़कियों जैसी बदलाव आ गया था । यानी रमेश अपने बचपन में यौन शोषण का शिकार हो जाता है । कहानी के शुरुआत में लेखिका से खुलकर बातचीत करनेवाला रमेश जब यह महसूस करता है कि किन्नर होने के कारण उसकी दीदी उसे घृणा से देखती है तो उसे बहुत दुख होता है और कहानी के अंत में वह अपने नानी से भी यह कहता है कि - "जाते-जाते मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरा जैसा कोई किन्नर दिखे तो उसका मजाक उड़ाने मत देना वह भी आम इनसान की तरह इनसान है । उसकी अपनी जिंदगी अपनी चाहत है । फिर क्यों उसे मजाक बनाकर रख दिया जाता है"[2] । रमेश के इस वाक्य में किन्नरों का दुख , दर्द उनकी जीवन त्रासदी है । वह अपने बचपन में पढ़ने - लिखने में होशियार था लेकिन किन्नरों के साथ बैठकर कोई भी पढ़ना नहीं चाहता था हमेशा उनकी मजाक उठाई जाती हैं । इस तरह किन्नरों की दर्द भरी जिंदगी को व्यक्त करने में एक हद तक यह कहानी सफल हुई हैं ।

'**मेरी बेटी**' नामक राकेश शंकर भारती की कहानी में एक परिवार में किन्नर का जन्म हो जाने के कारण परिवारवाले द्वारा उस बच्चे को किन्नर गुरु से पैसा लेकर सौप देते है । वास्तव में वह एक भिखारी था बच्चे का यौन शोषण करने के बाद वह उससे भीख मंगवाता हैं । लेकिन कहानी के अंत में अरोरा दंपति मुन्नी को अपनी बेटी स्वीकारते है । उसे वह पढ़ा लिखाकर डॉक्टर बनाती है । उसका ऑपरेशन होता है और वो पूर्ण रुप से स्त्री बन जाती है । इस तरह उसका जीवन बदल जाता है तब वह सोचती है : - "इस संसार में मेरा कोई वजूद है ही नहीं क्या हम सिर्फ भीख मांगने और जिस्मफरोशी के दलदल में फंसने के लिए जन्म लेते हैं ! काश ऐसा चमत्कार हो जाता कि मेरी जाती के सारे लोग मेरे जैसे ही हो जाते । इस समाज में हमें भी उतना ही प्यार मिलता , जितना स्त्री और पुरुष को मिलता है । हम भी तो दूसरे लोगों के जैसे ही नौ महीने तक माँ के गर्भ में पले पढ़े हैं । उसी ईश्वर ने हमें भी आम लोगों की तरह इस संसार में भेजा है"[3] । किन्नर भी इनसान है लेकिन हमारा समाज इनसे बुरी तरह व्यवहार करता है । मानव होते हुए भी उनके साथ जानवरों सा व्यवहार हो रहा है । किन्नरों के प्रति हो रहे इस रवैये को बदलने की कोशिश प्रस्तुत कहानी द्वारा हुआ हैं ।

एक लघु कहानी होते हुए भी पूनम पाठक की '**किन्नर**' नामक कहानी किन्नरों के प्रति हो रहे समाज की सामाजिक धारणा बदलने का सशक्त प्रयास हैं । कहानी में बस में किन्नर के बगल वाली सीट में बैठना मानसी नहीं चाहती है । वह कंडक्टर से उसकी सीट बदल देने की गुजारिश करती है लेकिन बस में बहुत भीड़ होने के कारण मानसिक को खड़े होकर यात्रा करना पड़ता हैं । तबी कुछ असभ्य

मावाली गुंडे बस में मानसी से छेड़ने लगते हैं । बस के बाकी लोग केवल तमाशा देखते हैं लेकिन किन्नर मानसी की रक्षा करता हैं । तमाशा देखने वाले किन्नर को हिजड़ा कहकर अपमानित करते हैं तो वह कहती है : - "हिजड़ा ये नहीं बल्कि आप सभी हो , जो अभी तक सारा तमाशा देख रहे थे किसी हिंदी फिल्म की तरह । कुछ देर और चलता तो शायद एम एम एस भी बनाने लगते पर मदद को एक भी हाथ आगे नहीं आता"[4] । यह कहानी एक ओर किन्नरों के प्रति समाज का नकारात्मक दृष्टिकोण दर्शाता है तो दूसरी ओर किन्नरों के मन की मानवीयता को भी व्यक्त करती हैं । कहानी में मानसी को किन्नर देवदूत के समान लगता है जो कि एनवक्त में उसके मान का रक्षा करता हैं ।

किन्नर समस्याओं पर आधारित एक और कहानी है डॉ. दिलीप मेहरा की **'दांपा'** कहानी । प्रस्तुत कहानी विवाहों में , बच्चा पैदा होनेवाले शुभ अवसरों पर किन्नरों की नेग माँगने की प्रथा पर आधारित है । कहानी में तन्ना भाई अपने बिरादरी के किन्नरों के साथ दाप (सौगात या भेट) माँगते घर - घर जाते हैं । ऐसे भेट माँगने जाते वक्त उन्हें अपमानित होना पड़ता है कुछ लोग पैसा देने से इनकार करते हैं । लेकिन तन्ना भाई और सलोनी उन गाँव वालों पर चिल्लाकर नंगे होकर उन्हें शाप देने की धमकी देती है वे कहते हैं कि : - "शाप दे देगी । वैसे भी तुम्हारा तो इकलौता लड़का है , वह कभी सुखी नहीं होगा । हिजड़ों का शाप बड़ा ही खतरनाक होता है । जो कहते हैं वैसे ही होता हैं । राधा और उसका पति यह सुनकर थर - थर कांपने लगे"[5] । वास्तव में लोगों के मन में यह डर रहती है कि किन्नरों का शाप बहुत खतरनाक होता हैं । इसलिए उनके मूँह नहीं लगना चाहिए । इसमें कोई वास्तविकता है या नहीं ये हम नहीं जानते । इसका फायदा किन्नर उठाते हैं और उन्हें धमकाकर पैसे ले लेते हैं । अगर ऐसा विश्वास लोगों के मन में न रहे तो किन्नर भूखे ही मर जाते ।

किन्नर आज भी तिरस्कृत , अप्रिय आवंछित एवं वर्जित महसूस करते हैं । उन्हें यह अहसास निरंतर दिलाया जाता है कि वह इस समाज में वर्जित हैं । वास्तव में किन्नरों को भी स्त्री पुरुष की तरह समान अधिकार मिलनी चाहिए । किन्नर भी हमारे समाज के हिस्सा है लेकिन उनकी पहचान कुछ ऐसा है कि सभ्य समाज उन्हें अच्छे नज़र से नहीं देखते । हिंदुस्तान ही नहीं बल्कि पूरे दक्षिण एशिया में इनकी पीड़ा की आवाज कोई सुनना नहीं चाहता । क्योंकि पूरे समाज के लिए वे एक बदनूमा दाग हैं । ये लोग सिर्फ हंसी के पात्र बन जाते हैं । अपनी परिवार द्वारा टुकराव कम उम्र में घर छोड़ने के कारण शिक्षा नहीं मिलना आदि कारणों से अपना पेट पालने के लिए वे देह व्यापार का धंधा करने लगने है लेकिन आज हालात बदल गई है । वे भी अपनी हक की लड़ाई लड़ रहे हैं । पढ़ - लिखकर समाज के उन्नत पद पर आ रहे हैं ।

आज ट्रांसजेंडर लोगों को अपनी सर्जरी भी करके अपने को पूरी तरह से बदल रहे हैं । दर्द सहकर वे सर्जरी कराते हैं सर्जरी में काफी पैसे भी लग जाते हैं लेकिन यह एक बहुत बड़ी सच्चाई है कि हमारे अस्पताल में सर्जरीयों के लिए उतनी सुविधाएँ भी नहीं हैं । जो कुछ सर्जरीयाँ होती है उसमें कभी कबार गड़बड़ियाँ भी हो जाती है इसका परिणाम ट्रांसजेंडरों को ही भुगतना पड़ता हैं । ट्रांसेक्सुअल **'अनन्या'** का हादसा इसका एक उदाहरण हैं । अनन्या केरल के एर्नाकुलम के किसी अस्पताल में सर्जरी कराती है लेकिन सर्जरी फ़ेइल हो जाती है और अनन्या को कई शारीरिक पीड़ा सहनी पड़ती हैं । वह अस्पताल अस्पताल से रिपोर्ट मांगती है लेकिन अस्पतालवाले रिपोर्ट देने से इनकार करते हैं । वह अपने ऊपर हो रहे इस अन्याय को समाज के सामने लाती है लेकिन अधिकारियों द्वारा उसे न्याय नहीं मिलती और वह आत्महत्या कर लेती है । यानी ट्रांसजेंडरों के लिए कानूनी अधिकार तो है लेकिन वह सिर्फ कागजों में रह जाती है उनके साथ हर दिन हादसाएँ होती है लेकिन कहीं भी वो दर्ज नहीं होती । यहाँ तक पुलिसवाले भी उनकी समस्याओं को गंभीरता से नहीं लेते हैं और झूठे आरोपों में उन्हें गिरफ्तार कर लेते हैं उनके आत्मा का लिंग शारीरिक लिंग से अलग हैं । लोग उन्हें यौन कर्मी के रूप में ही देखते हैं इसका कारण उनसे सेक्स के लिए प्रेरित करते हैं । लोगों के समझ में यह बात जल्दी नहीं आती कि एक लड़का लड़की की तरफ किस तरह महसूस करता हैं । लड़कों के साथ संबंध रखने के लिए वे इस तरह के खतरनाक सर्जरी करते हैं वास्तव में यह लोगों की गलतफहमी हैं । इसका मतलब यही है कि वे किसी दूसरे से नहीं बल्कि 'अपने आप से प्यार' करते हैं ।

कुछ लोग यह भी मानते हैं कि आदमी और औरत के संबंध ही प्राकृतिक है लेकिन हम कभी नहीं कह सकते हैं कि प्राकृतिक क्या है और आप्राकृतिक क्या है ? हम प्रकृति के केवल एक अंश है । किसी को भी किसी से प्यार हो सकता है । आगे समलैंगिकता पर आधारित राकेश शंकर भारती की कहानी है **'सौतन'** । इस कहानी में जैक नामक नवयुवक पढ़ा - लिखा समझदार है । अपनी गर्लफ्रेंड से ब्रेकअप हो जाने के कारण उनकी यादों को भूलने के लिए वह दूसरी जगह चला जाता है और वहाँ रहने के लिए कमरा खोजता है बहुत जल्दी ही उसे कमरा मिल जाती है । वहाँ वह सैलेश से जल्दी गुलमिल जाता हैं । सैलेश घर का किराया लेने वहाँ आ जाता है और इस तरह आते - आते उन दोनों के बीच शारीरिक संबंध भी हो जाता है । सैलेश पहले से शादीशुदा है और दो बच्चों का बाप भी था उनकी पत्नी कल्याणी को जब अपनी इस सौतन की खबर लग जाती है तो वह चौक जाती हैं । जैक को अपने छोटे देवर के समान देखनेवाली कल्याणी उससे घृणा करने लगती है । वह इस बारे में अपने पति से भी पूछताछ करती है और उससे पूछती है कि : - "क्या तुझे औरत से तसल्ली नहीं मिलती है ? औरत से तुझे मन नहीं भरता है क्या ? कब से उसके साथ गुदामैथुन करते हो ? यह तेरी कौन सी फितरत है ?

यह कैसी आदत है ? कब से तुझे इस चीज की लत लगी है ? जैक के यहाँ आने से पहले तुझे यह लत थी या फिर इस निमूँछा मर्द ने तुझे यह सब करना सिखा दिया है"[6] ? यह कहानी समलैंगिक जीवन पर आधारित कहानी के अंत में भी सैलेश अपनी पत्नी कल्याणी से झूठ बोलकर जैक से मिलने उसके यहाँ चला जाता है । इस तरह समलैंगिक जैसे एहम मुद्दों को लेकर भी लेखक ने अपनी लेखनी चलाती हैं । संक्षेप में कहा जाए तो लिंग भिन्न होना इसमें खुद की गलती नहीं हैं । पैदा होने के लिए दूसरों से माफी माँगने की भी जरूरत नहीं । जितनी ज्यादा समाज से दया माँगने लगे उतनी ज्यादा घृणा मिलेगी । ट्रांसजेंडर लोगों को किसी की भी सहानुभूति नहीं चाहिए बल्कि उन्हें अपने इच्छानुसार जीवन बिताने की हक चाहिए । पुस्तकों में बच्चों को लड़की की तस्वीर दिखाकर यह लड़की है और लड़का का तस्वीर दिखाकर यह लड़का है ऐसा कहने के साथ - साथ ट्रांसजेंडर की तस्वीर दिखाकर उन्हें यह समझाना चाहिए कि ट्रांसजेंडर होते कौन है । हमारी शिक्षा व्यवस्था सहानुभूती की नहीं वो तो समानुभूती की होनी चाहिए ।

<u>संदर्भग्रंथ सूची</u>

1. थर्ड जेंडर : हिन्दी कहानियाँ , सं. डॉ एम फिरोज खान , पृ – 29
2. वही , पृ – 33
3. वही , पृ – 41
4. वही , पृ – 149
5. वही , पृ – 55
6. इस ज़िंदगी की उस पार , राकेश शंकर भारती , पृ - 80

मेहेरुन्निसा परवेज़ के उपन्यास 'अकेला पलाश' में चित्रित स्त्री का जीवन संघर्ष

डॉ. प्रसीजा एन एम
असिस्टेंट प्रोफेसर
स्कूल ऑफ़ डिस्टेंस एजुकेशन , कालिकट विश्वविद्यालय

हिन्दी वर्तामान कथा साहित्य की कथाकार मेहरुन्निसा परवेज़ ने साहित्य की कई धाराओं में साहित्य सृजन किया है, जिनमें कहानी, उपन्यास तथा अन्य साहित्य के साथ-साथ "समर लोक पत्रिका "सम्पादन भी करती रही है । इनके साहित्य का मुख्य उद्देश्य नारी का समस्याओं पर प्रकाश डालना तथा मध्य प्रदेश के आदिवासी (बस्तर) लोगों के जीवन को मुख्य धारा में लाना । इस प्रकार मेहरुन्निसा परवेज़ साहित्य सृजन के साथ-साथ समाजसेवी का भी कार्य करती रही है ।

'अकेला पलाश' मेहरुन्निसा परवेज़ के एक प्रसिद्ध उपन्यास है । इसमें नारी की दयनीय स्थिति और शोषण का चित्रण किया गया है उसने अपने ज्यादातर उपन्यासों में महिलाओं की शोषित एवं तनावग्रस्त स्थिति को चित्रित किया है । इसलिए उनकी सभी रचनाओं में स्त्री पात्रों को प्रमुखता दी गयी है ।

श्रीमती मेहरुन्निसा परवेज़ अपने अनुभव को ही रचनाओं का आधार बनाया है । इसकी अधिकांश रचनाओं में नारी जीवन की निराशा, अधूरापन आदि को प्रमुखता दिया गया है। परवेज़ ने अपनी रचनाओं में आदिवासी स्त्रियों के अस्तव्यस्त जिंन्दगी को भी प्रतिपाद्य विषय बनाया है । इसके साथ-साथ उनकी समस्याओं को भी उसने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है । आदिवासियों के गरीबी और शोषण को भी उन्होंने अपनी रचनाओं में चित्रित किया है । उन्होंने नारी के विविध समस्याओं के साथ कामकाजी महिलाओं की परेशानी को भी अपनी रचनाओं का आधार बनाया है । विवेच्य उपन्यास 'अकेला' पलाश' में एक निम्न मध्यवर्ग की कामकाजी महिला की परेशानियाँ दिखायी गयी ।

आधुनिक युग के समाज में नारी सभी कार्यों में पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ती जा रही है। फिर भी उसे समाज में कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है । विभिन्न स्तरों पर समाज में नारी का शोषण हो रहा है। नारी को समाज में जीने के लिए अनेक नियमों का पालन करना पड़ता है । लेकिन ऐसा पुरुषों केलिए नहीं । अब भी कई देशों में लड़कियो को शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा नहीं मिल रही है। छोटे उम्र में ही उनकी शादी करा देते हैं। साहित्यकार समाज का एक सदस्य है । समाज में घटित घटनाओं को लेकर रचनाएँ करते हैं। कुछ महिला उपन्यासकार अपने जीवन में घटित घटनाओं को उसी रूप में ही चित्रण कर रहे हैं । साहित्यिक दृष्टि से उसे स्त्री विमर्श कहते जा रहे हैं।

अधिकांश उपन्यास नायक प्रधान होते हैं, नायिका प्रधान कम । परन्तु यह विवेच्य उपन्यास 'अकेला पलाश' नायिका प्रधान है, इसमें नायिका तहमीना को बहुत सी तीखे अनुभवों का सामना करना पड़ता है इसमें लेखिका मेहरुन्निसा परवेज ने नारी शोषण के विविध रूपों का चित्रण किया है।

समाज नारी को घर में ही बाँधकर रखना चाहता है। शादीशुदा नारी को घर से बाहर निकलने के लिए भी अपने पति से अनुमति लेनी पड़ती है। उसे अपने गुलाम के रूप में देखने की प्रथा समाज में है । इसका चित्रण विवेच्य उपन्यास में इस प्रकार करते है "खाना बनाना तो अपनी किस्मत में लिख लाये हैं, वह कहाँ छूटनेवाला है पता नहीं लोग शादी क्यों करते हैं ? शादी के बाद औरत केवल घर की नौकरानी बनकर रह जाती है। क्या घर की रखवानी और खाना बनाने केलिए ही औरते हैं ?"(1)

उपरोक्त वाक्यों द्वारा उपन्यासकार समाज के स्तर पर नारी की क्या स्थिति है ? खासकर शादीशुदा औरत अपनी जिम्मेदारियों से बाहर आ नहीं सकती । क्या नारी की विडंबना यही है ? पुरुषाधिक्य समाज में नारी का क्या स्थान है ? इसका सजीव चित्रण यहाँ किया गया है । इस उपन्यास की नायिका तहमीना एक पढ़ी-लिखी और अच्छी नौकरी करनेवाली होते हुए भी उसे एक साधारण पत्नी की तरह रहना पड़ता है। उसके पति उसे एक साधारण औरत की तरह देखता है। मनुष्य कितना भी आधुनिक क्यों न हो समाज के और पुरुषों के इस तरह के विचार में अब भी कोई परिवर्तन नहीं आया है।

समाज में अनेक प्रकार के अनावश्यक रूढ़ियों और अंधविश्वास आज भी फैली हुई है उसके कारण अनेक असहाय नारियों के जीवन बरबाद हो रहे हैं । सामान्य रूप से हर लड़की शादी होने के बाद ससुराल जाती है, और नई बहु के आने के बाद उस घर में कोई दुर्घटना या किसी को कुछ हो जाता है तो उसका जिम्मेदार लोग उस लड़की को मानेंगे । इस संदर्भ को विवेच्य उपन्यास में परवेज़ जी ने इस प्रकार प्रस्तुत किया । इसका उदाहरण हैं:- "तहमीना के दहेज के सामान रखे जा रहे थे । किसी ने ड्रेसिंग टेबिल का शीशा तोड़ दिया था। जिसे लेकर महिलाओं में चित्र विचित्र बातें चल रही थी 'यह तो अपशकुन है'"।(2) तहमीना की शादी के बाद वह जमशेद के घर पहुँचती है । उसके दहेज के सामान में एक शीशा भी था । वह टूट गया था। इस बात को लेकर शादी में आये हुए लोग इस तरह की बात कहते हैं। इससे यह पता चलता है कि लड़की की शादी के बाद उसके ससुराल में असंतोषजनक घटनायें होती है तो उसका जिम्मेदार लोग उस नयी दुल्हन को मानते हैं । इसके अलावा इससे यह भी संकेत मिलता है कि उस लड़की में कुछ दोष है जिसकी वजह से उसकी जिंदगी भी टूटेशीशे जैसे होती है। साफ चलनेवाली नहीं है । इस प्रकार लोग आज भी समाज में इस तरह के अधविश्वासों पर विश्वास रख रहे हैं । उपरोक्त प्रसंग में इसका जीवंत चित्रण किया गया है।

समाज में लड़की की शादी होने के बाद उसे कुछ भी करने के लिए पति की अनुमति लेनी पड़ती है। नौकरी केलिए भी उसके पति को पसंद है तो जाना है नहीं तो नहीं जाना । उसे घर के बाहर निकलने के लिए भी पुरुष की अनुमति की ज़रूरत होती है । पुरुषाधिक्य समाज से पुरुष हमेशा नारी को घर के अंतर बाँधकर रखना चाहता है । उसे किसी दूसरी पुरुष से बातें करने का भी इजाजत नहीं है । अगर वह दूसरे पुरुष से बात करती है तो उस पर शंका करते हैं लोग । विवेच्य उपन्यास में इससे संदर्भित एक उदाहरण इस प्रकार है- "जमशेद के शब्दों में मुझे ये सब फालतू बातें पसंद नहीं "। जमशेद कुर्सी से उठते हुए बोले, "और सुन लो, मुझे तुम्हारा उसके साथ यह अड्डा जमाना भी पसंद नहीं । कह दो वह रोज़-रोज़ यहाँ न आया करो | "(3)

ये बातें जमशेद तहमीना से कहता है। तहमीना विपुल के साथ बातें करना जमशेद को पसंद नहीं है । इसलिए उसने उपरोक्त बातें कहा। इससे यह पता चलता है कि शादी के बाद पत्नी को अपनी पति के अलावा दूसरे आदमी से बात करने की इजाजत नहीं है, चाहे वह अपनी भाई भी हो, लोग उसे गलत समझते हैं। अपने पति की अनुमति के बिना नारी दूसरे पुरुष से बात नहीं कर सकती । समाज में नारी को गुलाम के रूप में देखते हैं |

अगर समाज में दुर्भाग्य से किसी स्त्री पर अत्याचार हो जाता है तो उसे फिर उसके परिवारवाले भी अपनाते नहीं । लोग उसे समाज से भ्रष्ट मानते है और अलग रखते है। इस प्रसंग में नारी अत्याचार का शिकार होने के बाद समुदाय पर या परिवार पर उसका प्रभाव कैसा रहता है इसके बारे में यहाँ प्रस्तुत है- "में अब वापस नहीं लौट सकती मैडम, में नहीं चाहती कि मेरे कारण मेरे दूसरे भाई-बहनों पर असर हो, कष्ट हो, मेरे पिता के लोगों में बदनामी हो. इसी वर्ष मेरी छोटी बहन की शादी है ।"(4) विमला अपने प्रेमी द्वारा धोका खाकर घर से भाग जाती है और अत्याचार का शिकार बन जाती है। उसके बाद वह घर वापस लौटना चाहती है परन्तु परिवारवाले उसे समाज के लोगों के डर से घर में वापस नहीं बुलाते। अगर परिवारवाले उसे अपनाते हैं तो सारे लोग उसके घरवालों का मज़ाक उड़ायेंगे और बदनाम करेंगे । उस परिवार को समाज से बहिष्कृत कर देंगे ।

संक्षेप में कहे तो वैश्विक धरातल पर नारी की समस्या तमाम देशों में निरंतर बढती जा रही है। जो आज के समय की नारी के लिए एक विकट समस्या है। आज के समय में नारी कितना भी पढ़-लिख जाए या उच्च ओहदा प्राप्त कर ले लेकिन वैश्विक धरातल पर उपर्युक्त सारी समस्याएँ उस पर हावि ही रहती है जो आज के समय की नारी के लिए करुणांतिका है, विवशता है, मजबूरी है ।

<u>सन्दर्भ संकेत</u>

1. अकेला पलाश – पृ.29

2. अकेला पलाश- पृ. 111
3. अकेला पलाश – पृ.52
4. अकेला पलाश – पृ. 65

समकालीन आदिवासी नाटक :एक परिचय

राखी क्लेमन्ट
अतिथि प्रध्यापिका, हिन्दी विभाग,
श्रीशंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, तिरूर प्रादेशिक केन्द्र

भारत जैसे विशाल राष्ट्र आज आर्थिक विकास के पथ पर तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। हर कहीं विकास की झलक देखी जा सकती है। लेकिन हज़ारों साल अपनी परम्पराओं के साथ जंगल में जीवन-यापन करनेवाले वर्गों की स्थिति वैसी ही वैसी रह जाती है। विकास की धारा उन तक नहीं पहुँच रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के इतने साल बाद भी आदिवासी लोगों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। सदियों से उन पर होने वाले अन्याय और अत्याचार दिन ब दिन बढ़ते जा रहे हैं। उनके जंगल-ज़मीन उससे छीने जा रहे हैं,उसे अपने जंगलों से बेदखल किया जा रहा है। ये सब विकास के नाम पर हो रहा है। लेकिन विकास की सबसे बड़ी कीमत आदिवासियों को ही चुकानी पड़ रही है। उनका अपने ही क्षेत्रों से पलायन और विस्थापन करना पड़ रहा है। सदियों से आ रही इस स्थिति आज भी ज़ारी है।

आदिवासी का शाब्दिक अर्थ है- 'आदिम युग में रहने वाली जातियाँ'।वे जनजाति,वनवासी,गिरिजन आदि नामों से जाने जाते हैं। भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जनजाति माना है। डॉ.गारे के अनुसार "आदिवासी मूल निवासी है,इसलिए उन्हें आदिवासी शब्द से संबोधित करना उचित है।"[1] भारत की सामाजिक-संस्कृतिक जीवन में आदिवासियों का अपना अलग अस्तित्व है। सदियों से शोषित,पीड़ित ये जातियाँ आज भी अपनी अस्मिता की तलाश में हैं।वे अपने जंगल-ज़मीन-जल को बचाने के लिए लड़ रहे हैं।

आदिवासियाँ संख्या में काफी बड़ी है। दुनिया के अधिकांश हिस्सों में आदिवासी पाये जाते हैं। आफ्रिका के बाद हमारे देश में ही इनकी संख्या सबसे अधिक है। हमारे यहाँ पायी जानेवाली आदिवासी जातियों में भील, संथाल, मीणा, उरॉव, गोंड, मुंडा, खोंड, निकोबरी, कोली, बोरो, हो, सावरी ओंगे आदि प्रमुख हैं। आदिवासियों का जीवन प्रकृति पर निर्भर है। शोषण इनके जीवन का अभिन्न अंग बन गये हैं। संवैधानिक संरक्षण प्राप्त होते हुए भी आर्थिक संरक्षण के अभाव में उन्हें अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष करना पड़ता है। आज़ादी के इतने सालों बाद भी उनकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं देख रहे हैं।

इसके विरुद्ध आवाज़ उठाने में वे असमर्थ हैं। पहले शोषक के रूप में अंग्रेज़ी सरकार थे तो आज खुद देशी सरकार ही उनके शोषक बने हैं। वे आदिवासियों को अपने अधिकारों से वंचित करके जंगल में उनका प्रवेश तक रोका जा रहा है और उनका उस्तित्व छीनकर उन्हें जंगल से भी विस्थापित किया जा रहा है।

भूमंडलीकरण औऱ औद्योगीकरण ने आदिवासियों को अपनी जड़ों से उखाड़ दिया है और रोज़गार के अवसर समाप्त कर दिए हैं। शिक्षा,चिकित्सा,रोटी आदि जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए बढ़ती महंगाई बाधक बन जाती है। इन समस्याओं से जूझ रहे आदिवासियों का पिछडापन, अभावग्रस्तता, प्राकृतिक परिवेश, शोषण और व्यवस्थागत विसंगतियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने में हिन्दी साहित्य ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। । उन लोगों की नियति और त्रासदी को अभिव्यक्त करने में हिन्दी साहित्यकार सक्षम रहे।

आदिवासी साहित्य लेखन मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं- आदिवासी साहित्य (आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य) और गैर-आदिवासी साहित्य (गैर आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य)। आदिवासियों द्वारा लिखित साहित्य को 'आदिवासी साहित्य' और अन्य रचनाकारों द्वारा आदिवासी जीवन पर लिखित साहित्य को 'गैर आदिवासी साहित्य' के रूप में माना जाता है। आदिवासी साहित्य और गैर आदिवासी साहित्य में काफी अंतर है। आदिवासी साहित्य आदिवासियों की भोगे हुए जीवन की सृजनात्मक अभिव्यक्ति है। उसमें अनुभूति की सच्चाई होती है। इसके ज़रिए आदिवासी साहित्यकार खुद की पीड़ा और अनुभूति की प्रामाणिकता का दावा देता है। इनका मानना है कि गैर आदिवासी साहित्य में केवल दूसरों के प्रति करुणा और सहानुभूतिपरक दृष्टि ही मौजूद है। फिर भी आदिवासी समाज की विभिन्न समस्याओं एवं उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक समस्याओं को पूरी ईमानदारी के साथ व्यक्त करने की कोशिश दोनों प्रकार के साहित्यकारों ने किये हैं।

- **समकालीन आदिवासी नाटक**

कहानी, उपन्यास, कविता जैसी विधाओं की तरह नाटक भी एक सशक्त साहित्यिक विधा है। अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक दृश्य-श्रव्य और पढ़नीय होने

के कारण जन साधारण को भी प्रभावित करने में सक्षम रहा है। नाटक के माध्यम से आदिवासी जीवन संघर्ष को प्रस्तुत करने से अनपढ़-अशिक्षित आदिवासी लोग भी इससे लाभान्वित हो जाते हैं। यह उनमें आत्मचेतना को विकसित करने और उन्हें संघर्ष के लिए प्रेरित करने में सहायक होते हैं।

संख्या में कम होते हुए भी कविता, कहानी, उपन्यास की तरह आदिवासी साहित्य में ढेर सारे नाटक भी मिलते हैं। कृष्णचंद टुडू, हबीब तनवीर, डॉ.शंकर शेष, विभु कुमार सुनील कुमार 'सुमन', रोज केरकेट्टा, रवीन्द्र भारती, हृषिक्श सुलभ आदि के नाटक इसके लिए उदाहरण हैं।

- **आदिवासी लेखकों के नाटक**

'**एक बार फिर'** : यह युवा आदिवासी साहित्यकार सुनील कुमार 'सुमन' ने अंबेडकर की विचारधारा से प्रभावित होकर लिखा गया नाटक है। इसका प्रकाशन रमणिका गुप्ता द्वारा संपादित 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी' नामक पुस्तक(2002) में हुआ है। इसका पहला मंचन उनके ही निर्देशन में जे.एन.यू में युनाइटेड दलित स्टूटेंन्स फोरम की ओर से किया गया है। इसमें उन्होंने वर्तमान राजनीतिक परिवेश का मूल्यांकन करने का सफल प्रयास किया है और दलितों और आदिवासियों की प्रगति को देखकर द्विज मानसिकता से युक्त बाबाओं और राजनेताओं का खुला चित्रण भी मिलता है।

'एक बार फिर' में राजनीतिज्ञ लोग विशेषकर जेनरल काटेगरी में आनेवाले लोग दलित व आदिवासी लोगों की शिक्षा और उससे प्राप्त होने वाले पद से डरते हैं। वे उन्हे अपने साथ खड़ा कराने के लिए औऱ उनसे बराबरी करने के लिए तैयार नहीं है- "घोर कलियुग आ गया है। अब ब्राह्मणों का इस देश में रहना कठिन हो गया है।.....ये लोग हमारे लाख टांग अड़ाने के बावजूद खूब पढ़-लिख रहे हैं,आगे बढ़ रहे हैं और हर जगह,हर क्षण ,हमारी बराबरी करने के लिए तैयार बैठे हैं...।"[2] वे चिरकुटनाथ जैसे सन्यासी की सहायता से इस प्रश्न का समाधान करते हैं- "पहले तो हम वेकन्सी निकालते हैं,ओन्ली फॉर एस.सी./एस.टी के नाम से।फिर उनकी परीक्षा लेते हैं, इंटरव्यू भी कराते हैं औऱ अन्त में रिजल्ट देते हैं-नॉट स्यूटेबुल कैंडीडेट।"[3] यहॉ तो नाटककार वर्तमान राजनीति से व्यंग्य रूप में प्रश्न करते हैं।

इसके विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले युवा-लोग कॉलेज में,यूनिवेर्सिटी में, हर जगह में अम्बेड़कर, अम्बेड़कर जपते हुए अपना संगठन खड़ा करके विद्रोह प्रकट करते हैं। 114 पृष्ठवाले इस नाटक में समसामायिक भारतीय समाज को ही दिखाया गया है। दलितों और आदिवासियों के प्रगति को देखकर दूषित मानसिकता से युक्त बाबाओं और राजनेताओं का चित्रण भी इसमें शामिल किया गया है।

'मोर्चा मनगढ़' : घनश्याम सिंह भारी 'प्यासा' द्वारा लिखा गया ऐतिहासिक नाटक है 'मोर्चा मनगढ़'। इसमें बंजारा कमाज के सदस्य होते हुए भी भील जनजाति को जागृत करनेवाले 'गोविन्दगुरु' नायक के रूप में आते हैं। आदिवासियों के बीच जो बेकारी, गुलामी और नशापन मौजूद है, उससे मुक्ति दिलाने केलिए वह प्रयास करता है। लेकिन आदिवासियों के अधिकारों केलिए लड़नेवाले गोविन्द गुरु को सरकार द्वारा झूठा मुकदमा दायर करके फाँसी दी जाती है। इसी प्रकार गोविन्द गुरु नामक आदिवासी नेता के जीवन संघर्ष को ही इसमें वाणी मिली है।

'नुझइर डांड' : यह आदिवासी लेखक रोज केरकेट्टा द्वारा हिन्दी में अनूदित नाटक है। इसकी मूल भाषा खड़िया है। उन्होंने इस नाटक के माध्यम से आदिवासी संस्कृति को हड़प लेनेवाले वर्तमान राजनीतिज्ञों के प्रति विद्रोह व्यक्त किया गया है। राजनीतिक षड्यन्त्र की ज़रिए देशी सरकार जंगल पर कब्जा कर रही है। आदिवासी लोग अपने जल,जंगल,ज़मीन पर अधिकार वापस पाने के लिए संघर्षरत है। इसमें अपने खेत-खलिहान तक लूटने के लिए आनेवाले केसरिया लोग से अपनी प्रजा को सुरक्षित करने में प्रयत्न राजा और उनके साथ संगठित सभी लोगों की ओर नाटककार इशारा करते हैं- राजा : " मैंने इतने दिनों तक राज किया। मेरे राज में सब आनन्द से खाते-पीते,नाचते-गाते रहे। लेकिन आज शत्रु सामने आ गया है। वे हमसे लड़ेंगे। गढ़ लूटेंगे। बेटी-बहनों की इज्जत लूटेमगे। वे हम सब के दुश्मन है। यह विपत्ति सिर्फ मेरी नहीं,हम सबकी है। केसरिया लोग आदमी नहीं प्रेत है प्रेत।"[4]

इस नाटक का प्रमुख पात्र महतो के माध्यम से एक प्रतिज्ञाबद्ध जनजाति का दस्तावेज़ मिलता है- "केसरिया और सभी दुश्मनों से जाति की रक्षा के लिए लडूँगा।जाति की सेवा करूँगा।दौलत,मान,प्राण जाए शरीर में सांस चलते तक एक बूँद खून के रहने तक जाति की सेवा करूँगा।युद्ध मैदान से नहीं भागूँगा।दूसरे के

फंदे में नहीं फसूँगा। ईमान्दारी से रहूँगा- "[6] उनकी धीरता,राज्य की चिन्ता,लड़ने का उत्साह आदि से यह पता चलता है कि उन लोगों में धैर्य और साहस की कमी नहीं हैं। "जाओ अपने-अपने काम में लग जाओ। हमें जीतना है। खड़िया लोगों को जीतना है। हमें जीत कर ही रहना है।"[5]

- **गैर आदिवासी लेखकों के नाटक**

'पोस्टर' : यह हिंदी के चर्चित नाटककार डॉ शंकर शेष का सन् 1976 में प्रकाशित नाटक है। यह महाराष्ट्र की कीर्तन शैली में लिखा गया नाटक है। इसमें आदिम जन जाति पर वन के अधिकारी तथा जमींदार द्वारा होने वाले अत्याचार एवं अन्याय का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। 'पोस्टर' में मजदूर वर्ग और उनका शोषण करने वालों के संघर्ष के अनेक स्तर दिखाई देते हैं। कभी-कभी पटेल के रूप में तो, कभी दारोगा के रूप में, कभी पटवारे के तो कभी मुकादम के रूप में- इनका शोषण होता है। नाटक में बलात्कार देखने वाले युवक उस अन्यायी, अत्याचारी, नराधम का नाम नहीं लेता । क्योंकि उस नराधम ने उस युवा को छुरा निकालकर धमकाया- "खबरदार! जबान खोली तो टुकडे-टुकडे करके लाश तालाब में डाल दूँगा...तेरी जात के हर आदमी का घर जला दूँगा...ज़मीन से बेदखल कर दूँगा....."।[6] वह युवक न्याय पाने के लिए समाचार पत्रवाले और थानेदार के पास जाता है। थानेदार ने लड़की को थाने में लाने को कहा। लेकिन लड़की के बाप ने मना किया। इसका मतलब है- वे सब इन शक्तियों से डरते हैं।

डॉ.शंकर शेष ने इस नाटक में कीर्तनकार के द्वारा एक कथा सुनाई है। उसमें ज़मीन्दार पटेल आदिवासी मजदूरों पर अन्याय करता है। कल्लू और चैती मजदूरों को अपने अधिकारों से अवगत कराते हैं। अपने श्रम के वास्तविक मूल्य और शक्ति से अनभिज्ञ श्रमिक लोग अचानक एक दिन अपने श्रम की महत्ता से परिचित होते हैं। मजदूरों से डरकर पटेल उनकी मजदूरी आठ आने बढाता है। आदिवासी मजदूरों की माँग चार रुपये बढाने की है,परन्तु वह चार रुपये नहीं देना चाहता है। वास्तविक संघर्ष यहाँ से प्रारंभ होता है। अन्त में कल्लू और उसके साथियों को जमींदार की हत्या करने की कोशिश में दस-दस साल की सज़ा मिलती है तथा चैती को जबर्दस्ती पटेल की हवेली में पहुँच दिया जाता है। मजदूरों का संघर्ष अधूरा रह जाता है। गाँव में कोई क्रान्ति नहीं हुई। लेकिन इन आदिवासी

मजदूरों ने किसी से भीख नहीं माँगी। वे स्वयं लड़कर अपनी इस परिस्थिति से बाहर आए। इस कथा की समाप्ति के साथ उस लड़की का बाप बौखला उठता है। उसमें अन्याय और अत्याचार के खिलाफ लड़ने की हिम्मत आ जाती है। लेकिन अब वक्त बीत चुका है। वह बलात्कारी पापी भाग गया है। उसको पकड़ने के लिए वह युवा और कुछ साथी जाते हैं। नाटककार के अनुसार कल्लू तथा चैती ने अत्याचारी लोगों का जो विरोध किया है, उसे बंद नहीं करना चाहिए। आदिवासी लोगों को अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए।

'हवाओं का विद्रोह' : विभु कुमार का सन् 1986 में प्रकाशित नाटक है – हवाओं का विद्रोह। नाटककार इस नाटक के ज़रिए सरकार द्वारा आदिवासियों को शिक्षित बनाने के प्रयासों की विफलता की ओर इशारा करते हैं । आदिवासी लोगों के अनेक समस्याओं के साथ आधुनिक शिक्षा से उनके बीच खड़ी हुई वर्ग भेद भी इस नाटक का विषय बन जाता है। इस शिक्षा ने उनकी ज़मीन,सभ्यता औऱ संस्कृति को काटकर अलग कर दिया है और यह शिक्षा उनके जीवन का प्रतिकूल और उसके लिए विनाशकारी भी बन जाते हैं। इसका ज़िम्मेदार सरकारी व्यवस्था भी है। इसलिए नाटककार इसमें सरकारी व्यवस्था के प्रति सख्त विरोध भी प्रकट करते हैं-" इन्हें आधुनिक वनाने के चक्कर में, इन्हें असभ्य, भ्रष्ट विपन्न बन रहे है, दरअसल इन्हें इनकी ज़मीन से काट रहे हैं..जो भी अपनी ज़मीन से जुड़ा होगा,वही कल हमारे लिए खतरा बनेगा,यही नीति है हमारी व्यवस्था की, कि कोई आदमी ज़मीन से जुड़ा न रहें ।"[7]

इस नाटक का मुख्य पात्र लक्ष्मी आज की पढ़ी-लिखी युवतियों के वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जो अपने व्यवहारिक जीवन में, विषम परिस्थितियों में डाल दी गई है ।आगे बढ़ने की महत्वकांक्षा उसमें कूट-कूट कर भरी हुई है ।लेकिन जीवन की परिस्थितियों से समझौता वह अपनी शर्तों पर करना चाहती है ।उनमें अच्छी, श्रेयस्कर जिंदगी की चाह है। उस चाह की पूर्ति का अवसर व्यवहारिक जीवन में न मिलने के कारण उस में जबरदस्त आक्रोश है ।यह आक्रोश उन्हें जीने नहीं देता है ।अंत में वह आत्महत्या कर लेती है।लक्ष्मी की मृत आत्मा कहती है "पहली बार मुझे महसूस हुआ कि इस शिक्षा ने मुझे निकम्मा बना दिया है इसने मेरी जमीन,मेरी संस्कृति और समाज से मुझे काट दिया है"।[8] ऐसी आत्महत्या से मृत्यु उस

आदिवासी इलाके में पहली बार हुई है। इसका कारण आदिवासी शिक्षा को मानते है और सरकारी आधुनिक शिक्षा के विरुद्ध, घाटी के आदिवासियों में विद्रोह की हवा बहने लगती। उसी को हवाओं का विद्रोह नाम दिया गया है। नाटक के अन्त में नाटककार कहते हैं कि-"शिक्षा इन आदिवासियों के जीवन में समृद्धि लाने के बजाए उनके जीवन में विष ज़्यादा घोल रही है।यह शिक्षा इन्हें इनकी ज़मीन से,इनकी अपनी संस्कृति से काट रही। इनकी शिक्षा का आधार इनकी ज़मीन और उससे जुड़ी संस्कृति होना चाहिए। इस शिक्षा ने इन्हें केवल फैशन परस्ती सिखायी। आधुनिकता के नाम पर। क्यों हम इन्हें तथाकथित आधुनिक सभ्यता से जोड़ना चाहते हैं ?"[9]

'अगिन तिरिया' : यह सन् 2001 में रवीन्द्र भारती द्वारा लिखा गया नाटक है। एक मिथकीय कथा को लेकर इसका सृजन किया है। इसमें अग्नि और ज्ञान के द्वारा धर्म और सत्ता को अपने कब्जे में रखकर बैठे मुख्यधारा के सभ्य समाज का चित्रण मिलता है। इन लोगों ने 'अग्नि कुडुम्ब' के नाम पर अपना वर्ग बताकर अग्नि पर अपना अधिकार घोषित किया है और आदिवासी वर्ग को इस आलोक से वंचित करके समाज के निम्न श्रेणी में धकेल दिया है। सन्यासी सैनिक लोग अग्नि को पुण्य वस्तु मानते है ,उसे ईश्वर के समान पूजते हैं और अग्नि को कब्जे में रखकर अपने आपको ईश्रर के समीप समझते है – "माँ अग्नि है। उनका आलेक है। आलोक ही तो ईश्वर है और हम ईश्वर के समीप है।"[10]

आदिवासी लोग इस अग्नि को पाने की इच्छा रखते हैं। लेकिन अपने को देवपुत्र समझकर जीने वाले लोग अग्नि यानी ज्ञान के प्रकाश भी आदिवासियों तक पहुँचने नहीं देते हैं। यहाँ धर्म के नाम पर शोषण सहने वाले आदिवासी समाज का चित्रण मिलता है। वे लोग अग्नि के आलोक तक पहुँचना अशुभ समझते हैं। श्रेष्ठ मानने वालों के अनुसार "माँ अग्नि ने हमें ताप दिया,आलोक दिया...। पृथ्वी पर वास करलेवाले प्राणियों में हम ही हैं श्रेष्ठ जन। जिस माँ ने हमें इतनी श्रेष्ठता प्रदान की हो,हम उसे म्लेछ हाथों में कैसे जाने देंगे।माँ अग्नि की आकांक्षा रखने वाले निकृष्टों को पृथ्वी पर जीने का कोई अधिकार नहीं और जो माँ अग्नि को तिरोहित करने का दुर्विचार मन में पाले हुए हैं,उसका भी समूल विनाश करना होगा।"[11] सन्यासी

पुरोहित लोग अग्नि को सार्वजनिक बनाना नहीं चाहता है क्योंकि अपने हाथों से धर्म और सत्ता की शक्ति नष्ट हो जाने की डर उनमें हैं। इससे वे डरते हैं और वे यह भी जानते हैं कि आदिवासी एक साथ रहे तो उन्हें पराजित करना आसान कार्य नहीं है।

नाटक के अन्त में रवीन्द्र जी सुआ के द्वारा आदिवासी समाज के मन में प्रतिरोध की भावना को जगाते है- "इतना डरकर हम नहीं रह सकते माँ। मारे जाएँगे ते मारे जाएँगे। भय के चलते हम आवाज़ नहीं कर सकते....यह तो मुझसे नहीं होगा। .....आखिर हम कब तक भागते रहेंगे ? एक बार लड़ नहीं सकते।"[12] सुआ की प्रतिरोध भावना से प्रभावित होकर माल्या सन्यासी सैनिकों से लड़कर अग्नि को पा लेती है। आज अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करने वाले आदिवासी समाज के लिए सुआ जैसे पात्र प्रेरणा स्रोत बनकर उभरते हैं।

'धरती आबा' : यह सन् 2010 में ऋषिकेश सुलभ द्वारा लिखा गया मुंडा जन-जाति के नायक बिरसा मुंडा के जीवन संघर्ष एवं प्रसंगों पर आधारित नाटक है । इसमें बिरसा मुंडा के जीवन संघर्ष के साथ मुंडा समाज का भी जीवन संघर्ष विद्यमान है। पहले अंग्रेज़ों द्वारा होने वाले अन्याय और अत्याचार आज देशी सरकार द्वारा हो रहा हैं। विकास के नाम पर वे आदिवासियों के पैर तले की ज़मीन हड़प रही है। वे नये-नये कानून के ज़रिए आदिवासी समाज को लूट रही है- "जिस ज़मीन में हमारे दादा-परदादा गाय-गोरु चराते रहे...जिस जंगल की एक-एक डाल और एक-एक पता हमारा है,वह जंगल अब हमारा नहीं रहा।"[13] यहाँ हृषिकेश जी ने आज़ादी के पूर्व आदिवासी जीवन को चित्रित करके यह व्यक्त करने की कोशिश की है कि आदिवासी लोग आज भी स्वतन्त्र नहीं हैं। ऐसे समाज को स्वतन्त्रता संघर्ष के लिए प्रेरणा देने में बिरसा जैसे नेताओं की आवश्यकता है। बिरसा ने उलगुलान आन्दोलन के माध्यम से इसके लिए प्रयत्न किया है। "लौट कर आऊंगा मैं जल्द ही लौटूंगा.... मैं अपने जंगलों में अपने पहाड़ों पर।.. मुंडा लोगों के बीच फिर आऊंगा मैं।.. तुम्हें मेरे कारण दुख न सहना पड़े इसलिए माटी बदल रहा हूँ मैं।.. उलगुलान खत्म नहीं होगा। आदिम खून है हमारा। काले लोगों का खून है यह। भूख, लांछन, अपमान ,दुख,पीड़ा ने मिल जुलकर बनाया है इस खून को। इसी खून से जमी हे उलगुलान की आग । यह आग कभी नहीं बुझेगी.... कभी नहीं... जल्द ही लौट कर

आऊंगा मैं..."[14] बिरसा मुंडा का यह संवाद नाटक का मुख्य कथ्य है। मुंडा समाज के आदिवासी लेग पूर्वजों पर विश्वास रखते हैं और भूत-प्रेत पर भी विश्वास रखते हैं। इसके विरुद्ध आवाज़ उठाने का प्रयास बिरसा मुडा ने किया है। आज भी आदिवासियों को धर्म के नाम पर कई समस्याओं को झेलना पड़ रहा हैं। ऐसे धार्मिक अन्धविश्वासों को अंधेरे में पड़े समाज के लिए बिरसा मुंडा एक प्रेरणा स्वरूप है।

निष्कर्ष

इतिहास के किसी न किसी मोड़ पर प्रत्येक जनजाति अपने जल,जंगल और ज़मीन की रक्षा के लिए जुल्म और शोषण के विरोध में खड़ी हो गई है। सभ्य समाज हमेशा इन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं और उनपर शोषण की प्रवृत्ति दिन-ब-दिन बढती जा रही है। ऐसे में भारत देश की जनता का एक बहुत बड़ा हिस्सा जो समाज से कटा हुआ है,आज़ादी के बाद भी विकास की परियोजनाओं में उन्हें धकेल दिया गया है। वे आज अत्यन्त दयनीय जीवन जी रहे हैं। ऐसे समाज को तथाकथित सभ्य समाज के समक्ष उपस्थित करने का प्रयास नाटककारों ने किया है। उपर्युक्त सभी नाटकों में आदिवासियों के अभावग्रस्त जीवन, पिछडापन, नारी शोषण, निर्धनता, आर्थिक शोषण, व्यवस्था की विसंगतियाँ, सांस्कृ-तिक संकट, अज्ञान, असुरक्षा आदि कई प्रश्नों को हमारे सामने उपस्थित किया है। आज इक्कीसवीं सदी में भी उनके संकट और समस्याओं में कोई बदलाव नहीं आया है। इस प्रकार के कटु जीवन व्यतीत करने वाले आदिवासियों के जीवन को सूक्ष्मता के साथ रेखांकित करने में ये नाटककार सफल हुए हैं। उनके यह प्रयास आदिवासी विमर्श को गति प्रदान करने के साथ भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, पूँजीवाद के कराल हस्तों में पड़े आदिवासी समाज को जागरूक कर उनके प्रति खिलाफ उठाने के लिए प्रेरित भी करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. गारे गोविन्द ; आदिवासी समस्या और बदलते सन्दर्भ ; गटा प्रकाशन ; पूणे; 2000; पृ.सं.78

2. सुनील कुमार 'सुमन'; एक बार फिर; सं.डॉ.गुप्ता रमणिका ; आदिवासी स्वर और नयी शताब्दि; वाणी प्रकाशन; दिल्ली; 2002; पृ.सं .273
3. वही. पृ.सं.278
4. रोज़ केरकेट्टा ; नुझइर डांड; सं.डॉ.गुप्ता रमणिका; आदिवासी स्वर और नयी शताब्दि ; वाणी प्रकाशन ; दिल्ली; 2002; पृ.सं.287
5. वही. पृ.सं.290
6. डॉ.शेष शंकर ; पोस्टर ; डॉ.शंकर शेष का रचनावली ; सं.विनय ; किताब घर प्रकाशन ; दिल्ली;
1977; पृ.सं.282
7. विभु कुमार ; हवाओं का विद्रोह ; नैशनल पब्लिकोषन हाउस; दिल्ली; 1986; पृ.सं.280
8. वहीं.
9. वहीं.
10. रवीन्द्र भारती; अगिन तिरिया; राधाकृष्ण प्रकाशन; इलहाबाद; 2001; पृ.सं.103
11. वही. पृ.सं.90
12. वही. पृ.सं.96
13. हृषिकेश सुलभ; धरती आबा ; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; 2010; पृ.सं.28
14. वही. पृ.सं.35

यौर ड्रीम्स आर माइन नाउ - – रविंदर सिंह

श्रीलक्ष्मी उल्लास
तृतीय वर्षीय बी बी ए छात्रा
नैपुण्या कॉलेज , पोंगम

रविंदर सिंह का जन्म ओडिशा के बुर्ला नामक एक छोटे से शहर में हुआ था। उनका अधिकांश बचपन वहीं बीता।उन्होंने कंप्यूटर विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त की।उन्होंने प्रतिष्ठित इंडियन स्कूल ऑफ बिजनेस से एमबीए किया है।उनके आठ साल के लंबे आईटी करियर की शुरुआत इंफोसिस से हुई और माइक्रोसॉफ्ट में उनका सुखद अंत हुआ जहां उन्होंने एक वरिष्ठ प्रोग्राम मैनेजर के रूप में काम किया।उनके जीवन ने उन्हें एक दुखद कहानी दी।उन्होंने इसे अपने पहले उपन्यास के माध्यम से हमारे साथ साझा किया। उस दिल को छू लेने वाली कहानी ने लाखों दिल जीते और उन्हें बेस्ट सेलिंग लेखक के रूप में पहचान दिलाई।उन्होंने पहले लेखक को प्रकाशित करने के लिए 'ब्लैकिंक' नामक एक प्रकाशन उद्यम शुरू किया।

यह कहानी रूपाली नाम की एक अठारह वर्षीय लड़की के इर्द-गिर्द घूमती है, और उनके कॉलेज में सीनियर अर्जुन। रूपाली पटना, बिहार की रहने वाली हैं। वह मासूम, प्यारी, सरल, दयालु है। एक आदर्शवादी छात्रा ने पूरी तरह से अपनी पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित किया। जबकि वह करिश्माई, खुरदरा, शायद पहली नज़र में डरावना भी है। वह एक युवा नेता हैं, पूरी तरह से राजनीति में निवेशित हैं। रूपाली की अर्जुन के बारे में रूढ़िवादी राजनेता के रूप में पहली धारणा को परेशान करने के कारण उनकी शुरुआत खराब रही। बाद में डीयू में एक घटना दोनों को करीब लाती है। वे उतार-चढ़ाव का सामना करते हैं लेकिन एक-दूसरे के साथ खड़े रहते हैं।जैसे-जैसे वे एक-दूसरे को जानते हैं, उनके बीच की केमिस्ट्री धीरे-धीरे विकसित होती जाती है। पूर्वाग्रहों को दूर करने के साथ ही दोनों में प्यार हो जाता है। और इस तरह राक्षसों से भरी क्रूर दुनिया में एक प्यारी, मासूम प्रेम कहानी खिलती है। लेकिन अंत में, एक त्रासदी उनकी खुशहाल दुनिया पर प्रहार करती है। अकल्पनीय होता है और कहानी ऐसे मोड़ पर रह जाती है जब कोई मोड़ नहीं आता। रूपाली और अर्जुन का सुखी जीवन समाज पर राज करने वाले जानवर के प्रहार से बिखर गया है। अपने जीवन में सबसे विनाशकारी नुकसान के साथ, अर्जुन की दुनिया उलटी हो गई है। और रूपाली... उसकी दुनिया उजड़ गई है, उसके टुकड़े भी नहीं बचे हैं। उसके जीवन में एक ऐसा मोड़ आता है जहाँ उसे रात की ठंड में मरने के लिए छोड़े जाने से पहले, एक हज़ार मौतों को ज़िंदा सहने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

'Your Dreams are Mine Now' एक तीसरा व्यक्ति कथा है। यह एक दुखद अंत के साथ एक धीमा रोमांस उपन्यास है। उपन्यास में दो पात्रों के बीच के क्षणों को शब्दों में खूबसूरती से कैद किया गया है। यह कहानी दिल्ली यूनिवर्सिटी की है। यह निर्भया कांड के वास्तविक जीवन से प्रेरित है।कहानी की शुरुआत से लेखक भारतीय समाज के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करता है। कहानी का मुख्य फोकस नकारात्मक पहलुओं और एक समाज के रूप में भारतीयों के मुद्दों पर था। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए आरक्षण के दुरुपयोग से लेकर टीआरपी आधारित मीडिया कवरेज तक सभी का उल्लेख हमारे लेखक ने किया है। यह बताता है कि देश के युवा एक व्यवस्था में बदलाव के लिए किन शारीरिक संघर्षों से गुजरते हैं। हर समय भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाने के महत्व पर प्रकाश डाला।

IYour Dreams are Mine Now आपको रुलाएगा, हंसाएगा और खुश करेगा।किताब के कुछ पन्ने उबाऊ लगते हैं लेकिन सस्पेंस आपको पूरी किताब पढ़ने के लिए तल्लीन कर देता है। अर्जुन और रूपाली की खूबसूरत प्रेम कहानी आपके दिल को छू जाएगी। खैर, इस कहानी ने मेरे दिल को छू लिया और मेरी आत्मा को झकझोर दिया और मुझे उम्मीद है कि जब आप इसे पढ़ेंगे तो यह आपके लिए भी ऐसा ही करेगी। मुझे अंत पसंद नहीं आया। जैसा कि मैंने उल्लेख किया कि अंत ने मुझे आँसू में छोड़ दिया, मुझे व्यक्तिगत रूप से लगता है कि रूपाली के चरित्र को कम से कम इस तरह से नहीं मरना चाहिए था। यह इतना परेशान करने वाला था। यह एक अच्छी कहानी है लेकिन यह एक बेहतरीन कहानी हो सकती है यदि अंत में दोनों प्रेमी एक हो जाएं।

लिंग आलोचना; मलयालम फिल्म उद्योग में सुधार

एंजेल रॉय
प्रथम वर्षीय एम ए छात्रा
नैपुण्या कॉलेज, पोंगम

समाज हमेशा फिल्मों से प्रभावित होता है। सिनेमा ने लोगों और उनके चरित्र को ढालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रभाव या तो सकारात्मक या नकारात्मक हो सकता है। फिल्में बनाने में यह पूर्व निर्धारित व्यवस्था थी। सभी फिल्म मेकर्स ने शुरू से ही इसी रास्ते पर चले थे। कई फिल्मों में पितृसत्तात्मक विचार परिलक्षित होते हैं। प्रत्येक फिल्म के पात्रों के विकास के माध्यम से एक फिल्म विकसित की जाती है। फिल्मों की जांच करते समय चरित्र का महत्व ज्यादातर पुरुष को दिया जाता है। यह एक प्रकार का सामाजिक निर्माण है। लेकिन जब हम नई पीढ़ी की फिल्मों को देखते हैं, तो हम ऐसी कई फिल्में देख सकते हैं जिन्होंने इस सामाजिक निर्माण को तोड़ा। वर्ष 2010 से सटीक फिल्में होने के लिए, हमने मलयालम फिल्म उद्योग में महिला चरित्र को महत्व देने वाली कई फिल्में देखीं। पहले के समय में हमारे पास नायक के रूप में पुरुष होता था और महिला को नायक के लिए एक जोड़ी के रूप में चित्रित किया जाता था। आजकल नारी ही नायक है और उन्हीं के माध्यम से कहानी या फिल्म का विकास होता है। न केवल चरित्र बल्कि कथन, विषय आदि भी बदल जाते हैं। अब पुरुष और महिला दोनों पात्र समान स्थान साझा करते हैं। कभी-कभी इसकी महिला प्रधान भी। सिनेमा द्वारा अपनाए गए ये प्रगतिशील विचार समाज के कम से कम एक छोटे वर्ग को आगे और अलग सोचने के लिए प्रभावित कर रहे हैं। लोग उन बदलावों को स्वीकार कर रहे हैं। यह समाज पर एक बड़ा प्रभाव ला रहा है और रूढ़िवादी विचारों को तोड़ रहा है। पेपर लिंग अध्ययन के माध्यम से फिल्मों के इस परिवर्तन पर चर्चा कर रहा है। फिल्म बनाने का तथाकथित प्रकार अब चरण-दर-चरण प्रगति पर है। बदलने और विकसित करने के लिए और भी बहुत कुछ है लेकिन हम इन विकासों पर लक्षण वर्णन और अन्य पर चर्चा कर रहे हैं.

समाज हमेशा फिल्मों से प्रभावित रहा है और इसके विपरीत समाज फिल्मों को प्रभावित करता है। फलदायी फिल्मों से समाज में बदलाव आया है। फिल्मों ने समाज के सामाजिक मुद्दों को भी फिल्मों में ढाला है और उन फिल्मों के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करने की कोशिश की है। तथाकथित फिल्मों में पितृसत्तात्मक व्यवस्था थी। एक फिल्म में एक नायक के रूप में एक पुरुष चरित्र होगा और एक महिला चरित्र को एक सहायक अभिनेता के रूप में चित्रित किया जाएगा। यह

एक रूढ़िवादी प्रतिनिधित्व है। एक फिल्म आमतौर पर पात्रों के विकास के माध्यम से विकसित होती है। इसलिए एक चरित्र की विशेषताएं फिल्म के लिए एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। फिल्मों में शुरूआती दौर से ही पुरुष प्रधान कहानियों को दिखाया जाता है। पितृसत्तात्मक प्रतिनिधित्व और रूढ़िबद्ध विषयों के प्रतिबिंब ने दर्शकों को निष्क्रिय बना दिया। यानी लोग प्रभावित होते हैं और इस तरह से व्यवहार करते हैं जहां उनका मानना है कि सिनेमाई प्रतिनिधित्व सत्य और तथ्य हैं। लोग फिल्मी पात्रों की नकल करने की कोशिश करते हैं और घटना के परिणाम सकारात्मक या नकारात्मक होते हैं। पुरानी फिल्मों में महिलाओं को सिर्फ वस्तु के रूप में भी वर्णित किया जाता है। महिलाओं को भी सहानुभूति है। ज्यादातर फिल्में जेंडर से प्रभावित होती हैं। नारीवादी फिल्म सिद्धांत समुदाय में और सामान्य रूप से समाज में लगभग हर क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी और भूमिकाओं के बारे में बताता है।

22 फीमेल कोट्टायम, रानी पद्मिनी, ग्रेट इंडियन किचन आदि फिल्मों में मजबूत और बहादुर महिलाओं की तस्वीर चित्रित की गई है। जैसा कि हमने चरित्र के प्रभाव के बारे में बताया, ऐसी फिल्मों में महिलाओं ने उनमें एक सक्रिय व्यवहार पैदा किया है। ऐसी फिल्में उनके दिमाग को ढाल रही हैं और यहां तक कि उन्हें और अधिक आत्मविश्वास और मजबूत रहने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। वे अपनी समस्याओं के खिलाफ बात करने और उठाने के लिए पर्याप्त आत्मविश्वास प्राप्त कर रहे हैं। हम जो फिल्में देख रहे हैं, वे हमें अलग तरह से सोचना सिखाती हैं। निष्क्रिय और पितृसत्तात्मक समाज ने अपने विचारों को बदलना शुरू कर दिया है और नई पीढ़ी की फिल्मों में चर्चा किए गए नए विषयों को स्वीकार करना शुरू कर दिया है। लोग फिल्मों की आलोचना करने लगे। उन्हें एहसास होने लगा कि कौन गलत है और कौन सही। समाज प्रत्येक फिल्म के सकारात्मक पहलुओं को ग्रहण कर आगे की सोच रहा है। इसलिए फिल्में और उसके पात्र लोगों को प्रभावित और सुधार रहे हैं। इस तरह की अधिक से अधिक फिल्में पेश करने से इंसानों की मानसिकता बदल जाती है जो एक अच्छी बात है। हमारे पास ऐसी फिल्में हैं जो महिला प्रधान हैं और महिला प्रतिनिधित्व बढ़ रहा है। ये चीजें आजकल सामान्य हो रही हैं। अब पुरुष और महिला फिल्मों में समान स्थान साझा करते हैं। परिवर्तन चरण दर चरण प्रक्रिया में है। पुरानी फिल्मों से तुलना करें तो ये नई पीढ़ी की फिल्में अब तक आ गई हैं। लोग ऐसी फिल्मों को स्वीकार कर रहे हैं और इसलिए इंडस्ट्री इसी तरह की और फिल्में लेकर आ रही है। उन्होंने बहुत प्रारंभिक चरण से फिल्म निर्माण में एक पूर्व निर्धारित प्रणाली का पालन और अभ्यास किया है। लेकिन अब चीजें बदल गई हैं। हम चरित्र-चित्रण, कथन, विषय-वस्तु आदि में सुधार कर रहे हैं। सीरियल जैसे और भी बदलाव किए जाने हैं। मलयालम धारावाहिक एक ऐसा जहरीला कार्यक्रम है

जहां लोगों को झूठे आदर्शों से ढाला जाता है। धारावाहिकों में महिलाओं को दमनकारी लोगों के एक समूह के रूप में चित्रित किया गया है, जो समाज को दिया गया एक झूठा संदेश है।

जब हम पुरानी मलयालम फिल्मों को देखते हैं तो महिलाओं को ऑब्जेक्टिफाई किया जाता है। कुछ फिल्मों में महिलाओं को यौन वस्तुओं के रूप में चित्रित किया जाता है। ठीक वैसे ही जैसे सीरियल की महिलाएं पुरानी फिल्मों के दबे-कुचले लोगों की होती हैं। पिछली फिल्मों की महिला भारतीय संस्कृति का तथाकथित प्रतिनिधित्व करती हैं जो साड़ी पहनती हैं, अत्यधिक गहने जो सोने के हैं, वह चुप और शांत परिवार की लड़की है। लेकिन इन सभी वर्षों में उस सामाजिक निर्माण को बदल दिया गया है। अब चित्रित की गई महिला का एक अलग रूप और व्यक्तित्व है। कई फिल्में अब महिलाओं की समस्याओं और जीवन पर चर्चा करती हैं। जिन विषयों पर सार्वजनिक रूप से चर्चा करना इतना कठिन था, उन्हें अब फिल्मों के माध्यम से दिखाया जाता है। यह समाज को उसी पर चर्चा करने के लिए प्रोत्साहित कर रहा है। यह कई महिलाओं के लिए अपने जीवन के साथ आने और यह कैसे चल रहा है, के लिए एक प्रेरणा रही है। अब बोल्ड किरदार बनाने वाली बोल्ड फिल्में हम में से कई लोगों के लिए आदर्श या रोल मॉडल बन रही हैं। साथ ही पुरानी फिल्मों में ऐसी महिला अभिनेत्रियों को प्राथमिकता दी जाती थी जो गोरी हों और अच्छी दिखती हों। लेकिन अब यह केवल प्रतिभा मायने रखती है, रंग या रूप या दृश्य घटकों पर अब पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है। रंग, आकार, आकार, ऊंचाई आदि जैसा कोई भेदभाव नहीं। साथ ही महिलाएं अब अपना स्थान और अधिकार मांगने लगी हैं। वे उस स्तर पर पहुंच गए हैं जहां वे अपने लिए खड़े हैं।

यात्रा साहित्य में मनुष्य और प्रकृति का अंतसंबंध

डॉ. सोनिया एस
असिस्टन्ट प्रोफेसर
नैपुण्या कॉलेज, पोंगम,कोरट्टी

प्रकृति और मनुष्य के बीच बहुत गहरा संबंध है। आज तक मनुष्य ने जो कुछ हासिल किया वह सब प्रकृति से सीखकर ही किया है। न्यूटन जैसे महान वैज्ञानिकों को गुरुत्वाकर्षण समेत कई पाठ प्रकृति ने सिखाए हैं तो वहीं कवियों ने प्रकृति के सानिध्य में रहकर एक से बढ़कर एक कविताएँ लिखीं। इसी तरह आम आदमी ने प्रकृति के तमाम गुणों को समझकर अपने जीवन में सकारात्मक बदलावकिए।

दरअसल प्रकृति हमे कई सीख देते हैं। जैसे पतझड़ का मतलब पेड़ का अंत नहीं है। जिस व्यक्ति को इसका अर्थ समझ में आएगा वे अपने ज़िंदगी में हार आने पर कभी नहीं डरते और वे सफलता पाने की कोशिशकरतेरहेंगे।

प्रकृति की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वह अपनी चीजों का उपभोग स्वयं नहीं करती। जैसे-नदी अपना जल स्वयं नहीं पीता , पेड़ अपने फल खुद नहीं खाते, फूल अपनी खुशबू पूरे वातावरण में फैला देते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि प्रकृति किसी के साथ भेदभाव या पक्षपात नहीं करती, लेकिन मनुष्य जब प्रकृति से अनावश्यक खिलवाड़ करता है तब उसे गुस्सा आता है। जिसे वह समय पर बाढ़, सैलाब, तूफान के रूप में व्यक्त करते हुए मनुष्य को सचेत करती है। बेहतर यही होगा कि प्रकृति के नियम के अनुसार मानव को ढलना पड़ता हैं। उसी के अनुसार चलता है और समझौता करता है। मानव और प्रकृति के बीच के यही सहसंबद्ध साहित्य में भी चित्रित किया है।

'अरे यायावर रहेगा याद' में भी ऐसे अनेक संदर्भ मिलते है,जहाँ मानव और प्रकृति का अटूट बंधन का दृश्य देखने को मिलते है। यहाँ हम यह कहने को विवश पद जाते है कि प्रकृति के बिना मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। बाढ़ आए या भूकंप आए या तूफान आए या अकाल पड़े तो भी व्यक्ति अपनी जगह छोड़कर नहीं जाता। वे अपने अस्तित्व केलिए संघर्ष करता रहेगा । इस प्रकार मनुष्य और प्रकृति के अंतसंबंधों को व्यक्त करनेवाला चित्र 'माझूली' के संदर्भ में देख सकते है-"माझुली का एक मात्र सड़क ही वहाँ की ऊँची जगह है। बाढ आ जाने पर गाँव के नीचे प्रदेश पानी में डूब जाते हैं। गाँव भर के साँप ऊँची ज़मीन पर या पेड़ों पर चढ़ जाते है। अंत में सभी वन्य जन्तु आकर सड़क पर जाम जाते हैं। गाँव के जल प्लावन के कारण ग्रामवासी भी ऊँची ज़मीन पर आ जाते

हैं। हर गाँव में अपना-अपना मचान भी बन हुआ है। जिनकी देख – रेख करना वहाँ के गाँववालों का जिम्मेदारी होते हैं। बाढ़ में पानी अधिक आ जाने पर गाँववालों ने पेड़ पर बनाए हुए इन मचानों का आश्रय लेते हैं।"1 इसमें यह देख सकते है कि बाढ़ आ जाने पर उस सड़क पर सब आकर जम जाते है और एक मेले का प्रतीत होता है । जिस तरह मौसम आ जाने पर मौसमी बुखार होता है ,उसी प्रकार माझुली के लोगों ने भी अपने जीवन क्रम के इस अनिवार्य परिस्थिति को स्वीकार किया है। प्रकृति के इस संकटपूर्ण परिस्थितियों में भी यहाँ के लोग और अन्य प्राणी प्रकृति के साथ दिया है। वहाँ से छोड़कर नहीं जाते।

प्रकृति के बिना मानव अस्तित्व की परिकल्पना नहीं की जा सकती। मानव का मन, बुद्धि और अहंकार ये तीनो प्रकृति को संतुलित या संरक्षित करते हैं। मनुष्य के लिए धरती उसके घर का आंगन, आसमान छत, सूर्य-चांद-तारे दीपक, सागर-नदी पानी के मटके और पेड़-पौधे आहार के साधन हैं। इतना ही नहीं, मनुष्य के लिए प्रकृति से अच्छा गुरु नहीं है। आज तक मनुष्य ने जो कुछ हासिल किया वह सब प्रकृति से सीखकर ही किया है।

प्रकृति की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वह अपनी चीजों का उपभोग स्वयं नहीं करती। जैसे-नदी अपना जल स्वयं नहीं पीती, पेड़ अपने फल खुद नहीं खाते, फूल अपनी खुशबू पूरे वातावरण में फैला देते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि प्रकृति किसी के साथ भेदभाव या पक्षपात नहीं करती। जल,जंगल और ज़मीन विकास का पर्याय हैं। जल,जंगल और जमीन जब तक है तब तक मानव का विकास होता रहेगा। मानव जो छोड़ते हैं उसको पेड़ - पौधे लेते हैं और जो पेड़-पौधे छोड़ते हैं उसको मानव लेते हैं। जल,जंगल और जमीन से ही जीवन है।

'चनाब' नदी और मानव के गहरे संबद्धों का वर्णन कुछ इस प्रकार दिया है- "चनाब की लहरों में लोग हृदय ने अपनी सिहरन पहचानी है, उसी के साथ उसका सुख-दुख, प्यार और दर्द बाँधा हुआ है। चनाब के किनारे ही हीर और राँझा,सोहनी और महीवाल का प्यार उपजा, पनपा फूला और दुरदेव के विवर में झर गया। लेकिन सारे अंचल पर अपनी स्मृति की छाप छोड़कर... अब भी जब लोग डूबती हुई सोहनी की विलाप की गाथा गा कर पढ़ते हैं।"2

उपरोक्त प्रसंग में चनाब नदी के द्वारा मानव और प्रकृति का स्पष्ट और सुंदर चित्रण मिलती है। चनाब के लहरों के साथ मानव के हर प्रकार के भावों की तुलना कर सकते है। मानव पूर्ण रूप से प्रकृति पर आश्रित रहती है। चनाब के सौन्दर्य और मानव के साथ उसके तादात्म्य का वर्णन भी यहाँ देखने को मिलते है। चनाब और वहाँ के इर्द –गिर्द के लोग इतने नजदीक हुए है कि उन दोनों को

अलग करना संभव नहीं है। मानव ने यहाँ प्रकृति से तादात्म्य स्थापित किया और प्रकृति मानव हृदय की विभिन्न भावनाओं की क्रीडा भूमि बन गई। इन भावनाएँ गीत के रूप में निर्माण करके गाते हुए उसे याद करते रहते हैं।

संक्षेप में कहा जाए तो मानव प्रकृति के आदि सहचर तथा प्रकृति उसकी आदि सहचरी है। मानव तथा प्रकृति का संबंध बीज तथा वृक्ष के संबंध जैसा है। इसमे कौन पहला है, कौन बाद में यह कहना मुश्किल है। इस प्रकार देखा जाए तो मानव के उद्भव से लेकर मानव और प्रकृति का अटूट बंधन है।

संदर्भ

1. अरे यायावर रहेगा याद –अज्ञेय –पृ - सं 147
2. अरे यायावर रहेगा याद –अज्ञेय –पृ – सं 33

पारिस्थितिक संघर्ष : संजीव के उपन्यासों के सन्दर्भ में।

डॉ. टेसी पौलोस
असिस्टेंट प्रोफेसर
नैपुण्या कॉलेज , पोंगम

पृथ्वी की संरचना विधाता ने बड़े कौशल से निर्मित की है। संरक्षनात्मक वातावरण में मनुष्य एवं अन्य जीवों को हर क्षेत्र में जीने का अवसर दिया है। विभिन्न क्षेत्रों का भिन्न भिन्न प्रकार का जीवन है क्योंकि इन क्षेत्रों का वातावरण और जलवायु अन्य क्षेत्रों से पूर्णतः भिन्न होती है। एक क्षेत्र में जिस तरह का वातावरण होता है उसी के अनुरूप उस धरती में वनस्पतियां पैदा होती है। इसी के अनुरूप उन क्षेत्रों में जन्म लेने वाले जीव जंतुओं का जीवन स्तर और रहन-सहन का ढंग बन जाता है। आज पृथ्वी की स्थिति लगभग खतरे में है। मनुष्य ने स्वयं प्रकृति में असंतुलन पैदा कर ऐसा खतरा उत्पन्न कर लिया है। उसने अपने सुख के लिए पृथ्वी के उपयोगी भागों का दोहन किया और प्रगति के नाम पर पृथ्वी को अपने अनुकूल बनाने की कोशिश की। फल स्वरुप जितनी तेजी से मानव ने भौतिक उन्नति की उतनी ही तेजी से अपने जीवन दायक आवश्यक तत्व जैसे शुद्ध हवा, शुद्ध जल, उपजाऊ मिट्टी आदि के सर्वश्रेष्ठ गुण खो दिए। आज की भोगवादी सभ्यता ने मनुष्य को प्रकृति का दुश्मन बना दिया है। अपने सुख के साधन जुटाने के लिए मनुष्य ने प्रकृति के साथ क्रूर अत्याचार किया है। पृथ्वी पर होने वाले प्रतिकूल परिवर्तनों ने अब विश्व मानव को यह चेतावनी दी है कि अगर इस पृथ्वी के संतुलन को नहीं संभाल लेंगे तो यह पृथ्वी रहने योग्य नहीं रहेगी। आज का पर्यावरण रावण का रूप लेकर विश्व के सामने एक भयंकर खतरे के रूप में खड़ा है। इस खतरे से संपूर्ण भूमंडल का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।

संजीव के उपन्यासों में पारिस्थितिक संदर्भ का जिक्र हुआ है। मुख्यत: `सावधान! नीचे आग है`, `धार`, `पांव तले की दूब`, `जंगल जहां शुरू होता है` आदि उपन्यासों में परिस्थिति संबंधी घटनाओं का चित्रण हुआ है। भूमंडलीकरण से उत्पन्न विकृतियों का प्रभाव जीवन के हर स्तर पर दिखाई देता है। उसका बुरा प्रभाव सीधा परिस्थिति पर ही पड़ रहा है। पश्चिमी औद्योगीकरण का लक्ष्य है ज्यादा से ज्यादा उपभोग की वस्तुओं का वृहद पैमाने पर उत्पादन। इसके लिए विशाल मात्रा में संसाधन के रूप में माल और ऊर्जा की जरूरत है। इसी लक्ष्य के लिए मनुष्य भौतिक पदार्थों का रूपांतरण करता है। `सावधान! नीचे आग है` उपन्यास में अशास्त्रीय तौर पर होते खनन की वजह से धनबाद, चंदनपुर, आसनसोल आदि इलाकों की आरण्य संस्कृति पर पड़ते पारिस्थितिक आघातों का दस्तावेज प्रस्तुत

किया गया है। लालची मानव की स्वर्थता के कारण इस आरण्य संस्कृति की तबाही हो रही है। खनन उद्योग की गतिविधियां बहुत बड़े भू-भाग को प्रभावित करती है। खनन के लिए जंगल साफ कर दिए जाते हैं और नंगे हो चुके पहाड़ों में भूस्खलन आदि दुर्घटनाएं बढ़ जाती है। कोयला खानों के आसपास बिखरी काली धूल के नीचे दबकर धरती निर्जीव हो जाती है। जीव जगत और प्राणी जगत के जीवन का आधार मानी जाने वाली उपजाऊ मिट्टी भी बुरी तरह से प्रभावित हो जाती है। उपन्यास के आरंभ में चंदनपुर के कोयला अंचल से दुष्प्रभावित झरिया शहर की हालत को उपन्यासकार ने दिखाया है। "आग की नदी दामोदर और धुआं का शहर झरिया! कुहासा नहीं, धुआंसा! धूल, धुआं और कुहासा - इन से मिलकर एक शब्द बनता है धूआंसा।••••••• दोनों और खंड - खंड जुड़ते-टूटते हार्ड - कोक प्लांट की दैत्यमुखी ज्वाला की कतारें। बीच-बीच में लोहे के लंबे खांचे पर टंगी आकाश - चरखी से कोलियरियों के टॉप गियर, कोयले के स्तूपाकार मलबे और दूहें। श्मशान की चिता की तरह जगह जगह जलते कोयले।.....जहां- तहां रेल लाइनों के जाल, पंक्ति - पंक्ति खड़ी मालगाड़ियां, उच्छवास फेंकते स्टीम इंजन, डिब्बिनुमा मकान और सर पर रह रहकर काले खौफनाक परिंदे- सी गुज़रती रोप-वे की डोलियां। " (1)

'धार' में कोयल खदानों के दूषित परिवेश में सटकर बसे बासंगड़ा अंचल का मूर्त रूप उपन्यासकार ने पेश किया है। इस क्षेत्र में अक्सर काले साए मंडराते हैं। कोयला खदान और कारखानों के परिणाम स्वरुप इधर का प्राकृतिक परिवेश प्रदूषित हो गया है। धूप और धुएं में जलती बस्तियां, अधनंगे बच्चे, दमघोटू वातावरण, खांसते लोग, मरियल कुत्तों की तरह पेड़ और गंदगी का यहां साम्राज्य है। "न दिन है, न रात, दोनों की दहलीज पर संथाल परगना का पूरा नंगा इलाका घायल गुर्राते सूअर की तरह पडा है। नंगी- अधनंगी पहाड़ियां जहां-तहां खड़े शाल, महुए, खजूर और ताड़ के पेड़, ढेर की झाड़ियां, बलुई बंजर धरती, सूखती नदियां, सूखते कुएं तालाब, भयंकर पोखरियां खादें जहां - तहां सोए पड़े मुर्दे से लोग।"(2) `पांव तले की दूब` में विस्थापन की त्रासदी मुख्य रूप में दिखाई गई है। जंगल की निरंतर कटाई के कारण पारिस्थितिक तंत्र बिल्कुल उलझ गया है। बिजली कारखाने से निकलती प्रदूषित हवा लोगों को सिर्फ बीमारी ही देती है। कारखाने से बहने वाले दूषित पानी के कारण नदी का पानी जहरीला बन जाता है और गांव के लोग कई रोगों का शिकार बन जाते हैं। "यह रोग तो मनसा नाले के चलते हैं। बिजली के कारखाने का सारा गंदा पानी बहता है इसमें। और उससे भी जहरीली है हवा। चिमनियों का सारा ज़हर फेंकती रहती है इधर।"(3) कारखाने तथा जंगल की सफाई के परिणामस्वरुप जो भयानक असर जंगल की पारिस्थितिकी पर पड़ता है, इसका यथार्थ रूप इस उपन्यास में मिलता है। `जंगल जहां शुरू होता है` उपन्यास का केंद्रीय पात्र कोई व्यक्ति न होकर जंगल ही है। पूरे उपन्यास

में जंगल अपने विविध रूपों में एवं छवियों के साथ खुलता है और यह एक आरण्य गाथा बन जाता है। मिनी चंबल कहलाए जाने वाले पश्चिमी चंपारण क्षेत्र में विकसित उपन्यास का हर पात्र जंगल को जीतने का प्रयास कर रहा है। उपन्यास के शीर्षक के साथ जुड़ा `जंगल` पारिस्थितिक संदर्भ को उजागर करता है। प्रकृति से पृथक होकर मानव का अस्तित्व नामुमकिन है। अक्सर मानव इस हकीकत से बिल्कुल मुंह मोड़ता है कि वह प्राकृतिक धरोहर को बचाने के बजाय उसे और कलुषित बनाता ही रहता है। शायद लोगों की अशिक्षा एवं अंधविश्वास ही इसके लिए उत्तरदायी हैं। उपन्यास में बिसराम की दुलारी को सांप काटता है। बनकटा गांव के बुजुर्गों की राय में लाश को न जलाया जा सकता है, न गाडा जा सकता है। उनकी रूढ़िगत मान्यता के अनुसार लाश को केले के तने से लपेट कर गंगा नदी में प्रवाहित किया जाना चाहिए। वे मानते हैं कि गंगा मैया खुद ही उस विष को खींच लेती है और मुर्दा जी उठता है। मगर वे इस तथ्य से अनभिज्ञ है कि इस प्रकार नदी में लाशों को प्रवाहित करने से जल प्रदूषित होता है। लाशों के सड़ने से वायु भी बराबर मलिन हो जाती है।

<u>पारिस्थितिक संकट के खिलाफ संघर्ष</u>

विकास के नाम पर वायु, पानी और मिट्टी का प्रदूषण आज सहज स्वाभाविक प्रक्रिया बन गई है। संजीव के उपन्यास इसके सशक्त उदाहरण है। 'धार` में बासंगड़ा गांव में हरी भरी जमीन में तेजाब का कारखाना खुलता है। इसके परिणामस्वरूप वहां के खेत, कुआ सब खराब हो जाते हैं, फसल सूख जाती है तथा लोगों को पीने का पानी भी नहीं है। पेड़- पौधे, कुएं, तालाब यहां तक कि मनुष्य भी कारखाने की दूषित हवा से जल रहे हैं। लोग खांसी, उबकाई जैसी बीमारियों से पीड़ित है। तेज़ाब की फैक्टरी से निकलने वाली ज़हरीली हवा के कारण जंगल, जानवर एवं मानव भी मुरझा रहा है। मैना और अविनाश शर्मा के नेतृत्व में आदिवासी लोग फैक्टरी के खिलाफ संघर्ष करते हैं। मैना का पिता टैंगर ने इस फैक्टरी के लिए ज़मीन दिया था, जिनका उद्देश्य था - लोगों की बेरोजगारी तथा भूख मिटाना। मगर इस ज़हरीली फैक्टरी को सहायता देने पर मैना और उसकी मां उसके खिलाफ हो गई। मैना की मां को शोषकों ने डायन घोषित करके गांव से भगा दिया था। मैना अब इस संघर्ष को अविनाश शर्मा के नेतृत्व में आगे बढ़ा रही है। टेंगर अब इस फैक्टरी का चौकीदारी भी कर रहा है। मैना और टैंगर के बीच इस विषय को लेकर नाराजगी थी। '' मैना का ज़िद है कि ई फैटरी को तोड़ के रहेगा और बाप का ज़िद कि जो तोड़ने आएगा, उसका सर तोड़ देगा।"(4)_फैक्टरी के खिलाफ के इस संघर्ष में एक और महेंद्र बाबू, पंडित सीताराम, टैंगर तथा मैना का पति फोकल जैसे शोषक था जिनके खिलाफ मैना और अन्य गांव वाले अपना विरोध दिखाते थे। अपना पति फोकल को भी इस विषय पर

मैना ने छोड़ दिया था क्योंकि फोकल महेंद्र बाबू और पंडित सीताराम का चमचा था। मैना सभी गांव वालों को लेकर फैक्टरी के खिलाफ नारे लगा रहे थे "भाइयों, काम छोड़के निकल आवो, ऊ फैटरी नहीं, हम सबकी मौत है।"(5) मैना के संघर्ष के बारे में हैदर मामा कहते हैं: "उसी दिन मैना फोकल का संग छोड़कर डब्बे में रहने लगी। रात होते ही मैना कुल्हाड़ी लेकर फैक्टरी का टंकी तोड़ने के लिए निकल पड़ती और उधर टेंगर रात - रात भर लाठी लेकर फैक्टरी का चक्कर काटता पहरा देता - धरमजुद्ध। इसी वारदात में मैना को जेल हुआ, कोर्ट में फोकल और टैंगर भी मैना के खिलाफ गवाही दिए।"(6) बासांगड़ा गांव का पर्यावरण पूरी तरह बिगड़ चुका है। फैक्टरी से निकलती दूषित हवा तथा अन्य प्रदूषण के कारण उस गांव का चेहरा ही बदल गया है। उपन्यास में अविनाश शर्मा प्रदूषित बासंगडा गांव के हालात का परिचय मंगर को देता है। "..... इस छटपटाती बस्ती को गोड्डा जाने वाली सड़क के वाहनों की घरघराहट रात - दिन खरोंचती रहती है और दूसरी ओर से बगल से गुज़रने वाली मेन लाइन की रेलगाड़ियां जब - तब सटकारा करती है। मगर बासंगड़ा सचमुच का बांस गड़ा है, उठकर भागता भी नहीं, यहीं पड़े - पड़े मौत का इंतजार करता रहता है। ..... हवा जब गांव की ओर घूमती है तो अपनी रही - सही जान लिए बासंगड़ा खांसता है .....ना, बासंगड़ा नहीं, उनकी उंगली फैक्टरी की ओर उठ रही थी, वह उजली - उजली फफूंदी की झुर्रियों में लरजती तेज़ाब की फैक्टरी खांसती है, अपनी धीमी बत्तियों की बुझी आंखों की चिलम में गांव को भरकर पीती और सों - सो की खुश्क आवाज़ के साथ उजला - उजला ज़हर उगलती हुई फैक्टरी।"(7)

आदिवासी लोग अब इस बात पर ज़िद पकड़ चुके थे कि इस ज़हर की फैक्टरी को अपने इलाके में और नहीं चलने देंगे - ना खुद इस में काम करेंगे, ना औरों को भी काम करने देंगे। उन्हें बस अपनी ज़मीन की सलामती चाहिए, अपनी खेती बच जाए, मजदूरी नहीं चाहिए। इस विषय पर क्रम - क्रम से कई मीटिंगें हुई और आदिवासी लोग अपने ज़िद पर अटल थे। फोकल और टैंगर की बात कोई सुनता नहीं था। इस प्रतिकूल परिस्थिति पर महेंदर बाबू और पंडित सीताराम धनबाद जाकर यूनियन के कुछ गुंडों को ले आए। डरावनी मुंह-देह वाले इन गुंडों को देखकर बांसवाड़ा में खलबली मच गई। एक क्षण के लिए मैना भी डर गई और अन्य लोग भी। मगर अब एक-एक कर अपने अस्त्र-शस्त्र संभाल रहे थे। "क्या करें ? कहां से ले आए पानी? कुएं, तालाब सब में तो तेज़ाब है। स्टेशन पर सिपाही पानी लेने देते नहीं। उसकी नजरें अजगर- सी फैली पाइपलाइन पर टिकी हुई थी। सहसा डब्बे से दौड़कर हथौड़ा उठा लाई और दोनों हाथों से उसने पाइप के ज्वाइंट पर दे मारा। देखते ही देखते फ़ौव्वारे की शक्ल में पानी का स्रोत खुल गया। तालियां बज उठी। सब ने चुल्लू भर - भर पानी पिया। पानी पीते ही चेतना

लौटी। उसी आवेग के तहत जिसके हाथ जो आया, उठाकर चल पड़ा। औरतों और बच्चों तक ने हाथ में ईंट- पत्थर उठा लिए। सबको घेरकर तीरंदाज चल रहे थे अर्द्धवृत्ताकार।"(8) फैक्टरी के खिलाफ संघर्ष करने का उनका फैसला अटल था, इसीलिए ही उनमें आत्म धैर्य एवं विरोध करने का हिम्मत आ चुका था। पचास मजदूर जो फैक्टरी में चमचा होकर काम करते थे, वे फैक्टरी की ओर बढ़ रहे थे तो फैक्टरी विरोधी लोगों ने उन्हें रोकने की हिम्मत की। लेकिन अपने अहंकार में उन्होंने एक न सुनी और आगे बढ़ गए। "एक माझी दौड़कर उनके सामने आकर खड़ा हो गया मगर उसकी गर्दन पकड़ कर ज़मीन पर ढेल दिया गया। लेकिन इसके बाद वे आगे एक कदम भी न बढ़ सके। चार-चार तीर लोहे फाटक पर टन्न-टनान बरसे। फिर तो ईंट-पत्थरों की वह बौछार हुई कि पचास मज़ूरों को संभलने का मौका ही न मिला। तीन तरफ से घेर कर उन्हें निशाना बनाया जा रहा था। दस ही मिनट में पचास मज़दूर घायल होकर भागे। फोकल कुचले चींटें-सा वही छटपटाता पड़ा रहा। आवेग की तीसरी लहर कूड़े गाड़ी से जा टकराई। खलासी ने रमिया की छाती पर हाथ रख दिया था। मैना ने जैसे ही देखा, बांस की फट्टी लेकर उसे दौड़ा लिया। खलासी बचने के लिए ट्रक के गिर्द चक्कर काटने लगा। मैना पीछे दौड़ते दौड़ते थक गई तो रुककर उलटी दिशा में घूम कर उसे दे मारा। लोगों के 'अब छोड़ भी दो' कहने के बावजूद भी वह उसे तब तक पीटती रही, जब तक मोडल ने उसे पकड़कर जबरन हटा कर ट्रक पर लाद कर रवाना नहीं कर दिया। ट्रक रवाना होकर गया। यह तो आवेग का दौरा- दौरा था।"(9) तेज़ाब की फैक्टरी को बंद करवाने के लिए जो विरोध मैना ने पूरे गांववालों के साथ किया, उसका एक सशक्त रूप था यह। इस संघर्ष के बाद कुछ लोग पुलिस के डर से भागे थे, मगर बाद में उन्होंने चूहे - बिल्ली के खेल को समाप्त करके पुलिस के सामने अपने आप को पेश किया।

आज़ादी के बाद हमारे देश में खनन उद्योग के विकास पर ध्यान दिया गया तथा भारी उद्योगों की स्थापना के कारण खनन उद्योग का तेजी से विकास हुआ। खनन से संबंधित गतिविधियों का अत्यंत दूरगामी प्रभाव हमारे पर्यावरण पर पड़ता है। सामान्य लोगों का दैनिक जीवन प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से खनन गतिविधियों पर ही निर्भर करता है। खनिज पदार्थों की बढ़ती मांग तथा देश में बढ़ती बेरोज़गारी ने अवैध खनन के धंधे को बढ़ावा दिया है। इन सब का परिणाम यह हुआ कि जिस गति से खनन उद्योग का विकास हो रहा है, उसकी दुगुनी गति से पर्यावरण के क्षरण की प्रक्रिया में वृद्धि हो रही है। खनन प्रक्रिया के कारण पूरा का पूरा भू-दृश्य बुरी तरह बिगड़ जाता है। भूमि, वायु, प्राकृतिक जल स्रोत और जल स्तर पर भी प्रभाव पड़ता है। मैदानी क्षेत्रों की तुलना में पर्वतीय क्षेत्रों में चल रही खनन गतिविधियों के कारण अधिक तबाही होती दिखाई गई है। जंगल साफ कर दिए जाने के कारण

नंगे हो चुके पहाड़ी में भूस्खलन, धंसान आदि घटनाएं बढ़ती जा रही है। खनन क्षेत्रों में धरती से खनिज पदार्थ आदि निकाल लेने के बाद पूरा क्षेत्र कई वर्षों तक बेकार और बंजर बना रहता है। यह क्षेत्र पेड़-पौधों तथा जीव-जंतुओं से रहित होकर अपना मौलिक स्वरूप खो चुका है। वनस्पति, जीव- जगत और प्राणी-जगत का आधार मानी जाने वाली उपजाऊ मिट्टी भी नष्ट हो चुकी है। प्राकृतिक संसाधनों का अवैज्ञानिक दोहन, प्रदूषण में वृद्धि, पर्यावरण का विनाश आदि कुछ ऐसी समस्याएं हैं, जिनका सामना अधिकांश खनन क्षेत्रों को करना पड़ रहा है। संजीव का उपन्यास 'सावधान! नीचे आग है' और 'धार' कोयलांचल के संघर्ष को उजागर करती है। चंदनपुर के कोयला खदान पर आधारित उपन्यास 'सावधान! नीचे आग है' में कोयला खदान के आग में कई लोग जल गए हैं। चंदनपुर गांव के लोग इस खदान की सज़ा भोग रहे हैं। यह इलाका बैठ रहा है। गांव वालों को पीने का पानी नहीं क्योंकि दामोदर नदी का पानी, कोयला खदान का गंदा पानी बहने से दूषित हो गया है। यह पानी पीकर पशु-पक्षी तक मर रहे हैं। झरिया गांव की ज़मीन के नीचे करोड़ों टन कोयला जल जाने से लोगों का डर है कि यह समूचा इलाका बैठ जाएगा और जल जल कर एक दिन सब कुछ खत्म हो जाएगा। उधम सिंह जब पहली बार झरिया आया था, तब एक सूचना-पट्ट उसकी आंखों के आगे उभर आया था - "सावधान! सड़क के नीचे आग है"।(10) झरिया में दूर-दूर तक सिर्फ धुआं और काली धूल थी। इसी कारण से ही वहां मज़दुर लोगों का हालत शोचनीय थी। वे कई बीमारियों के शिकार थे और कंगाल भी थे।

'पांव तले के दूब' में बिजली के कारखाने से गंदा पानी मनसा नाले में बहाया जाता है और कारखाने से ज़हरीली हवा भी उठती है। उससे लोग रोगग्रस्त बन जाते हैं। पेड़-पौधों के पत्ते भी काले हो गए हैं। उपन्यास में मुख्य पात्र सुदीप्त की डायरी में बिजली की प्लांट की वजह से हो रहे प्रदूषण की समस्या सूचित है - "जब से प्लांट बना है चिमनी से उड़ने वाली राख और गैसों के चलते प्रदूषण बढा है और ज़मीन बंजर होती चली गई है। अब इन गांवों के खेतों में पहले का एक-चौथाई अनाज भी नहीं पैदा होता। रोजी-रोजगार का यह हाल है कि प्लांट बनने के पूर्व जो उम्मीद थी कि स्थानीय लोगों को रोजगार मिलेगा, वह उम्मीद पूरी नहीं हुई। मुश्किल से दो प्रतिशत स्थानियों को काम मिला है। कुओं के एक सिरे से प्रदूषित हो जाने और सूख जाने के बाद पानी का एकमात्र स्रोत मनसा नाला बचता है, जिसमें प्लांट और कॉलोनी का तमाम प्रदूषित जल बहाया जाता है। बीसों लोग फालिज के मारे हुए हैं। कुल मिलाकर यह कि गांवों की जिंदगी पहले से ज्यादा बदहाल है, अत: स्थानीय लोग इसे मित्रवत नहीं बल्कि घृणा और शत्रुवत भाव से देखते हैं।"(11) सुदीप्त अपने दोस्त समीर को पचपहाड़ के क्षेत्र के आदिवासियों की रोगग्रस्त जिंदगी दिखाता है। समीर उन गरीबों की दुर्बल काया को देखकर बिल्कुल हैरान हो जाता है। "कुपोषण और रोग की मारी छायाएं और उन पर चिपकी फटी-फटी उजली आंखें।

अगर रात में कोई देखे तो निश्चय ही डर जाए।"(12) माझी हडाम के घर जाकर उसकी लकवा की मारी अठारह साल की बेटी जानकी को देखता है। प्रदूषित एवं ज़हरीली पर्यावरण का शिकार बनकर जानकी, हाथ-पांव-चेहरा सूखे के मरीज़ जैसे पतले और डरावने बन गए हैं। उपन्यास में हर आदिवासी पात्र अपनी इस बदहाल में उलझा हुआ हर प्रतिकूल परिस्थिति से संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है।

'जंगल जहां शुरू होता है' उपन्यास में जंगल की सुरक्षा की ओर संकेत किया गया है। डाकू और पुलिस के बीच के संघर्ष के कारण जंगल का पारिस्थितिक संतुलन बुरी तरह से बिगड़ गया है। पुलिस, ज़मींदार वर्ग तथा डाकू ही जंगल के सौंदर्य को पूरी तरह नष्ट करते हैं। इन लोगों के अपना अधिकार दिखाने एवं कायम रखने की कोशिश, जंगल के पारिस्थितिक तंत्र पर बुरा असर डालता है।

जंगल के संकट के विरुद्ध संघर्ष

औद्योगीकरण के विकास के लिए सरकार ने निजी व सरकारी संस्थानों के लिए ज़मीनों का अधिग्रहण किया और लाखों लोग विस्थापित हो गए। कई बांधों के निर्माण के लिए हजारों एकड़ जमीन हड़पी गई। कोयला खदानों में विशेषत: मशीनीकृत खनन प्रणाली के चलते जंगल-दर-जंगल उजड़ गए। भारी विस्फोटों और भूगर्भ परियोजनाओं के कारण ज़मीन धंस गई और जंगल के अस्तित्व पर बुरा प्रभाव पड़ गया। गलत सरकारी नीति के कारण अंधाधुंध मशीनीकरण शुरू किया गया तथा जंगल की कटाई भी बढ़ती गयी। परिणामस्वरुप जंगल का हकदार आदिवासी जनता, भूमि विहीन हो गए। शोषक शक्तियों द्वारा अपने स्वार्थ लाभ के लिए जंगली संपत्ति पर कब्ज़ा करके उसे बाहर ले जाने पर आदिवासियों का रोजगार भी समाप्त हो गया। आज अपनी ही संपत्ति जंगल में आदिवासियों के प्रवेश को रोकने लगा है। "जिस धरती पर वे बसते हैं, उसके गर्भ में खनिज है यानी सम्पदा है, ऊपर नदियां और जंगल है - पर वहां उनका प्रवेश वर्जित है। नदियां कोयले की धूल से काली होकर प्रदूषित हो गई - उनका पानी किसी काम का ना रहा - जंगल कट गए, ज़मीनें गड्ढा और पोखर बना दी गई - खेत धंस गए, पानी के स्रोत सूख गए या नीचे चले गए या पहुंच के बाहर हो गए। आग पर बैठा है आज इस क्षेत्र का आदमी। धरती के नीचे आग लगी है - कब धंस जाएगी धरती - पता नहीं है।"(13) 'पांव तले की दूब' उपन्यास के केंद्र में पंचपहाड़ क्षेत्र है जहां झारखंड आंदोलन ज़ोर से उठा था। यह कथा डोकरी ताप विद्युत संस्थान के मंच पर घटित होती है। उपन्यासकार इसके माध्यम से यह जताना चाहता है कि औद्योगीकरण किस प्रकार गांव तथा आदिवासियों को विस्थापित कर रहा है। अधिकारी और

पूंजीपति वर्ग न केवल आदिवासियों का शोषण करते हैं अपितु राष्ट्रीयता की लूट भी करते हैं। औद्योगीकरण की नीति और राजनीतिक कुटिलता के चलते आदिवासी बुरी तरह छटपटाते हैं। उपन्यास का प्रधान पात्र सुदीप्त परिस्थितियों को बदलने की कोशिश करता है। वह आदिवासी समाज के लिए बेहतर दुनिया का निर्माण करना चाहता है, इसके लिए प्रयास भी करता है। झारखंड के आदिवासी समाज की सच्चा हालत संजीव ने सुदीप्त के शब्दों में व्यक्त किया है:- "झारखंड खनिज संपदा का भंडार है। नए नए उद्योग लगाए जा रहे हैं, नई दुनिया की पगध्वनी! अगर सरकार ईमानदारी से इनका हक दे दे तो एक ही छलांग में कई मंजिलें अपने-आप तय हो जाती है - पर अन्याय देखो,आदिवासियों को, जिनकी ज़मीन पर यह कारखाने लग रहे हैं, उन्हें टोटली डिप्राइव किया जा रहा है - इस संपत्ति में उनकी भागीदारी तो खत्म की ही जा रही है, उन्हें ज़मीन से भी बेदखल किया जा रहा है, मुआवजा भी अफसरों के पेट में।"(14)

संजीव के उपन्यासों में पारिस्थितिक संदर्भों का जिक्र हमेशा हुआ है। कोयलांचल के दमघोटु माहौल में हो रहा संघर्ष एवं विस्थापन की त्रासदी में जंगल का संकट उनकी रचनाओं में प्रमुख स्थान पाते हैं। पिछले कई दशकों में 'पर्यावरण' देशीय तथा अंतर्देशीय चर्चा में एक मुख्य विषय बना है। जंगल की बेरहम कटाई, वन संपत्तियों की कमी, प्रदूषण आदि समस्याएं केवल देश की प्रगति पर ही नहीं बल्कि देश की सुरक्षा पर भी सवाल उठाती है। पारिस्थितिक शोषण से हमारा पारिस्थितिक संतुलन पूरी तरह बिगड़ गया है। मानव समाज का अस्तित्व एवं मानव संस्कार प्रकृति से ही उत्पन्न हुआ है। इसे याद में रखकर, पारिस्थितिक संरक्षण के लिए नई योजनाओं का आविष्कार करके, विकास के संकल्पों में परिवर्तन लाकर, प्रकृति को विनाश से बचाने के लिए राष्ट्रों को एक साथ कदम बढ़ाने होंगे।

<u>सन्दर्भ ग्रंथ सूची</u>

1. संजीव: सावधान ! नीचे आग है, पृ.सं. 12
2. संजीव: धार , पृ.सं. 41
3. संजीव: पांव तले की दूब, पृ.सं. 79
4. संजीव: धार , पृ. सं. 19
5. संजीव: धार , पृ. सं. 22
6. संजीव: धार , पृ. सं. 22-23
7. संजीव: धार , पृ. सं. 37

8. संजीव: धार , पृ. सं. 58
9. संजीव: धार , पृ. सं. 59
10. संजीव: सावधान ! नीचे आग है, पृ.सं. 11
11. संजीव: पांव तले की दूब, पृ.सं. 84
12. संजीव: पांव तले की दूब, पृ.सं. 77
13. रमणिका गुप्ता: आदिवासी: विकास से विस्थापन, पृ. सं. 10
14. संजीव: पांव तले की दूब, पृ.सं. 20